ॐ श्री परमात्मने नमः

दशम अध्याय

गीता के प्रत्येक अध्याय में एक-एक नए विषय पर बात कही गई प्रतीत होती है लेकिन सम्पूर्ण गीता का मूल उद्देश्य एक ही है- हम संसारियों के मोह पर गदा प्रहार। अतः सभी अध्याय परस्पर गुंथे हुए हैं। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में पहले के अध्यायों पर एक निगाह डालना उस अध्याय के विषय को समझने में सहायक होगा।

गीता के दूसरे अध्याय में सार रूप में सभी विषयों को छू कर अर्जुन की उत्सुकता जगाने, उसे मोह विहीन स्थितप्रज्ञ की छवि दिखाने के बाद भगवान क्रम से एक-एक तरीका विस्तार रूप से समझाते हैं जिससे स्थितप्रज्ञता प्राप्त की जा सके। भगवान श्रीकृष्ण के मत में यही परम पद है। यह मृत्यु के बाद का मोक्ष नहीं बल्कि जीवन्मुक्ति है। इसी जीवन में, इसी संसार के बीच व्यवहार करते हुए भी हम उन्मुक्त रहें, किसी प्रकार का बंधन, दबाव और टेंशन अनुभव न करें। इस बंधन, दबाव, टेंशन के सम्मिलित अर्थ के लिए एक शब्द संस्कृत में है- विषाद। विषाद का यह रोग अर्जुन को था, यही रोग हम सबको है और इसी रोग के निदान के लिए विभिन्न अध्यायों में भगवान विभिन्न औषधियां बताते हैं। एलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेदिक सभी प्रकार की औषधियां हैं जिसको जो रुचे वही ले ले।

सबसे पहले भगवान ने कर्म रूपी औषधि बताई। कर्म तो हम सभी करते हैं लेकिन उसके करने के तरीके यानी उसके साथ की भावना को जरा बदल लें तो वही कर्म हमें जंजाल में फंसाने के बदले जंजाल से छुड़ाने का साधन बन सकता है। हम संसार में रह कर सब कुछ करते हुए भी इस प्रकार उन्मुक्त और निर्लिप्त रह सकते हैं मानो हमने कुछ किया ही नहीं हो। इस स्थिति को भगवान श्री कृष्ण अकर्म की स्थिति कहते हैं। यही स्थितप्रज्ञता का अंतिम सोपान है।

इतना सब बताने में तीसरा, चौथा और पांचवां अध्याय लग गया। फिर

भगवान ने बताना आरम्भ किया कि अकर्म की इस स्थिति तक पहुंचने के लिए हम क्या-क्या साधना करें। छठे अध्याय में ध्यान की पद्धति बताई। सातवें में भक्ति का सूत्र पकड़ा। आठवें में जीवन की अंतिम सांस तक साधना करते रहने के लिए प्रेरित करते हुए नवें में समर्पण रूपी राजविद्या बताई जो सबके लिए अत्यन्त सरल और सुलभ है। सब कुछ भगवान को अर्पित कर दें, अपना मन उन्हीं में लगाएं, उन्हीं की भक्ति करें, उन्हें ही नमस्कार करें, ऐसे उपदेश के साथ भगवान ने नवां अध्याय समाप्त किया है।

'किन्तु प्रभु, हमारा मन तो इस संसार में बुरी तरह रमा हुआ है, हमें तो आप दिखलाई देते नहीं, हम आपको पहचानते नहीं, जानते नहीं, फिर कैसे आपकी भक्ति करें? कैसे आप में मन लगाएं? कैसे आपको प्रणाम करें? हमें तो यह संसार दिखलाई देता है, हमें सूर्य दिखाई देता है जिसकी ऊर्जा के बल पर हम जीवित हैं, हमें तो चन्द्रमा दिखाई देता है जो शीतलता और अमृत बरसा कर वनस्पतियों को पुष्ट करता है, हमें हिमालय दिखाई देता है, हमें गंगा दिखाई देती है। ये सब हमारे जीवन के स्रोत हैं। हम तो इनको नमस्कार कर सकते हैं। इनके अलावा पूजनीय के रूप में हमें ऋषि मुनि दिखाई देते हैं। इन सबके कितने उपकार हैं हम पर। हम कैसे इनसे मुख मोड़ लें और अपने मन को केवल आप में लगाएं?'

भगवान मुस्कुराते हैं हमारी नादानी पर। सोचते हैं, 'मैंने सातवें अध्याय में कहा था कि मैं ही सम्पूर्ण जगत का प्रभव और प्रलय हूं। मैंने कहा था कि मेरे बिना संसार में कुछ नहीं है, मैंने मणियों की भांति सारे संसार को सूत्र में पिरो रखा है, लेकिन मेरे इन अबोध शिशुओं ने कुछ समझा नहीं।' अतः दसवें अध्याय में हमें विस्तार से समझाते हैं कि उन्हें देखने के लिए हमें संसार से आंखें मूद लेने की आवश्यकता नहीं। यह सारा संसार उन्हीं का वैभव है। वे ही तो सार रूप से सब में हैं। हमारी दृष्टि की संकीर्णता है कि हम केवल बाहरी आकृति देखते हैं, उसमें भगवान को नहीं देख पाते। यदि उस आकृति को हम भगवान का वैभव मानकर नमस्कार करें तो जीवन का रंग ही बदल जाए। इस अध्याय का नाम विभूति योग दिया गया है। यह अध्याय हमें कण-कण में भगवान का दर्शन कराता है। वैसे तो भगवान समान रूप से सभी में विद्यमान हैं भले वह जड़ हो या चेतन, सुंदर हो या असुंदर, हमें प्रिय हो या अप्रिय। लेकिन हम तो वर्तमान में मूढ़ता की गहनतम खाई

में गिरे हुए हैं। हम अपने सगे भाई को ही अपना नही मान सकते तो जिसे जन्मजात शत्रु समझते आए हैं उसमें भी एक ही आत्मा का दर्शन कैसे कर लेंगे?

भगवान भी समझते हैं कि ऐसी गहरी मोह निद्रा में सोए व्यक्ति को एकाएक झंझोड़ कर सीधे खड़ा नहीं किया जा सकता। श्री कृष्ण तो महानतम मनोवैज्ञानिक हैं। वे हमें परमेश्वर को देखना सिखा रहे हैं न। जैसे बच्चों को पहले वर्ण माला सिखा कर सरल शब्द सिखाए जाते हैं जैसे कमल, महल इत्यादि, फिर धीरे-धीरे संयुक्ताक्षर बताते हैं जैसे भक्ति, कर्णपल्ली वगैरह। इसी प्रकार भगवान को भी पहले सीधे-सीधे रूप में देख लें जो आसान है, फिर जटिल रूप में देखें।

जैसे राम में परमात्मा को देखना आसान है क्योंकि वे सद्गुणों की खान हैं। सहज ही हमारे मन में उनके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है। किन्तु रावण में महान कर्म और तपस्या शक्ति होते हुए भी क्रूरता मिली हुई है। यह मानो संयुक्ताक्षर है। पहले राम में रहने वाले परमेश्वर को देखना सीख लें फिर रावण में रहने वाले परमेश्वर को देखना सीखेंगे। पहले सज्जनों में तो परमात्मा को पहचानें, फिर दुर्जनों में भी उसे देखने का अभ्यास करेंगे। पहले सरल अक्षर फिर संयुक्ताक्षर। पहले स्थूल में परमात्मा को पढ़ लें फिर सूक्ष्म में पढ़ेंगे। धीरे-धीरे हमें संसार रूपी ग्रंथ को पूरा पढ़ना आ जाएगा।

संसार को देखने की दृष्टि बदल देने वाला यह विभूति योग नामक दशम अध्याय है। आइए हम इसमें प्रवेश कर अपनी दृष्टि का परिमार्जन करें। संसार को वस्तुओं और प्राणियों के जगत के रूप में नहीं वरन् ईश्वर की विभूति के रूप में देखना सीखें।

श्री भगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।।१।।

श्री भगवान बोले- हे अर्जुन! मेरे परम वचन को तुम फिर सुनो जिसे मैं तुम्हारे हित की कामना से कहूंगा क्योंकि तुम मेरे में अत्यन्त प्रेम रखते हो।

भगवान इस अध्याय में अपनी विभूतियों का विस्तार से वर्णन करने वाले हैं। भगवान की विभूतियों को तत्व से जानने पर भगवान में भक्ति भी दृढ़ होगी और संसार के प्रति हमारा दृष्टिकोण भी बदलेगा। ये दोनों ही बातें हमारे परम हित में है। भगवान को और इंसान को सही-सही न समझ पाने के कारण ही हमारे लोक व्यवहार में सारी गड़बड़ी आती है और हम दुख भोगते है।

जैसे हम किसी मेले में घूम रहे है। हमारे सामने मैले कुचैले वस्त्रें में लिपटा एक घिनौना व्यक्ति आता है। हम घृणा से मुंह फेर लेते है। कुछ देर बाद एक भिखारी अत्यन्त दीनता के साथ पैसे की याचना करता है। वह दो दिन से भूखा है पर हम उसे बुरी तरह दुत्कार देते है। कुछ देर बाद हमें एक तेजस्वी पुरुष दिखाई देता है। मेले की भीड़ भाड़ में भी उसके चेहरे पर असाधारण शांति है। उसके दीप्तिमान चेहरे को देखकर हम सहज ही उससे आकर्षित होकर उसे प्रणाम करते है। वह हाथ उठा कर हमें आशीर्वाद देता है तो उसकी धीर गम्भीर आवाज हमारे अन्तरमन तक को शांति पहुंचाती प्रतीत होती है। जरा दूर जाने पर हम गले में लाल रुमाल बांधो एक लोफर को देखते है जो लड़कियों को देखकर सीटी बजा रहा है। आज कल के युवाओं की उच्छृंखलता पर अपने साथियों को लेक्चर पिलाते हुए हम आगे बढ़ते है तो एक मौलवी साहब हमारी ही ओर आते दिखाई देते है। किसी तरह अस्सलाम अलेकुम कहकर हम अपना पिंड छुड़ाते है।

अंत में हमें पता चलता है कि उस घिनौने व्यक्ति, भिखारी, तेजस्वी, लोफर, मौलवी साहब सभी के रूपों में एक कलाकार था जो अपनी कला के लिए विश्व प्रसिद्ध है। जिसे बहुत बड़े-बड़े पुरस्कार और सम्मान मिल चुके है। हमारा हृदय उस कलाकर के प्रति श्रद्धा से भर जाता है। अब तो वह घिनौने व्यक्ति के रूप में भी आ जाए तो हम उसे नमस्कार कर अपनी ऑटोग्राफ बुक बढ़ा दें। बार-बार उसे देखने, उससे मिलने, उससे परिचय बढ़ाने की इच्छा होती है। उसके विषय में अधिक से अधिक जानना चाहते है। कहीं भी उसका कार्यक्रम हो तो हम सब काम छोड़ वहीं जाना चाहते हैं। हर एक को उसके बारे में बताते फिरते हैं- वाह, क्या अदभुत रूप धरा था उसने! तेजस्वी व्यक्ति का रूप तो असाधारण था पर मुझे तो घिनौने व्यक्ति का रूप सबसे जोरदार लगा।

बदल गई न हमारी दृष्टि? बदल गया न हमारा व्यवहार? इसी प्रकार संसार के नाना रूपों में जब एक कलाकार को पहचान लेंगे तो हम आज जो है, जैसे है, जो कर रहे हैं, जो सोच रहे है। वह सब बदल जाएगा। सत्य को जानना परम आवश्यक है। इसके बिना व्यवहार ठीक हो ही नही सकता और सही व्यवहार के बिना हमारा हित नहीं हो सकता ।

श्री भगवान को हम सभी अत्यन्त प्रिय है। उनकी बातें ध्यान से सुनने का धैर्य यदि हम दिखाएं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठते हैं उन्हें लगता है कि हम भी उनसे प्रीति रखते है और वे हमारे कल्याण के लिए हमें सच्चाई बताने को उत्सुक हो उठते है।

यहां 'भूय' एवं 'श्रृणु' अर्थात् 'फिर से सुनो' का व्यवहार हुआ है। वास्तव में भगवान ने सातवें अध्याय के आठवें से बारहवें श्लोक तक सत्रह विभूतियां बताई थी, फिर नवें में भी सोलहवें से उन्नीसवें श्लोक तक सैंतीस विभूतियां बताई। पिता, माता, धाता, यज्ञ, सामग्री, यज्ञकर्ता, फल भोक्ता आदि के रूप में जान लेने के बाद हम अभी तक उनको पूर्ण रूप से नहीं समझ पाए। अभी भी हम भगवान को अलग और संसार को अलग देख रहे हैं। अभी भी हम सोच रहे हैं कि संसार में रहते हुए हर क्षण परमात्मा का ध्यान कैसे रखूं! इसीलिए भगवान अत्यन्त कृपा पूर्वक कह रहे हैं- 'तुम फिर से सुनो और सत्य को समझने का प्रयत्न करो।'

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ।।२।।

मेरे प्रकट होने को न देवता जानते हैं न महर्षि क्योंकि मैं देवताओं और महर्षियों, सभी का आदि हूं।

संसार की किसी भी वस्तु का विज्ञान जब हमें पढ़ाया जाता है तो सबसे पहले यह बताते हैं कि किसकी उत्पत्ति कैसे हुई। इसके पश्चात उसकी संरचना, विशेषता आदि बताई जाती है। लेकिन भगवान को लौकिक विज्ञान की भांति नहीं पढ़ा जा सकता। हम समझ लें कि हम तो साधारण संसारी हैं, अपने बेटों, पोतों में रमे रहने के कारण हमने कभी भगवान की ओर ध्यान

ही नहीं दिया, हमें क्या पता वे कैसे उत्पन्न हुए लेकिन बड़े-बड़े ऋषि मुनि सालों साल ध्यान करते हैं उन्हें जरूर पता होगा। उन्हें न पता हो तो देवता तो जरूर जानते होंगे।

भगवान कहते हैं कि मेरी उत्पत्ति को तुम तो क्या महर्षि और देवता भी नहीं जानते क्योंकि मैं उनका भी आदि हूं। जो बाद में जन्मा है वह पहले से जन्मे हुओं की उत्पत्ति नहीं जान सकता। भगवान तो सम्पूर्ण सृष्टि के आदि हैं। सृष्टि की उत्पत्ति ही उन्हीं से हुई है। अतः उन्हें पूरी तरह हम जान ही कैसे सकते हैं? यदि भगवान को जानना संभव ही नहीं तो हम क्या करें? हमारा कल्याण कैसे होगा?

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३।।

जो मुझे अज (अजन्मा) अनादि और सम्पूर्ण लोकों का महान ईश्वर जानता है वह मनुष्यों में असम्मूढ़ है और सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

तर्क से ईश्वर को समझने का प्रयत्न करना मूर्खता है। आइए जरा तर्क करके देखें क्योंकि 'मैं तो बुद्धिजीवी हूं, अंधविश्वास करता नहीं, जब तक आप एक्सपेरिमेंट या तर्क द्वारा प्रूफ नहीं कर देंगे मैं भगवान को मानने वाला नहीं।'

देखिए, तर्क शास्त्र का मूल सिद्धान्त है कि कार्य कभी कारण को नहीं समझ सकता। जैसे टार्च का प्रकाश हुआ कार्य और उस प्रकाश का कारण है उसकी बैटरी। प्रकाश सभी पर पड़ सकता है लेकिन बैटरी को प्रकाशित नहीं कर सकता। ईश्वर भी इस सृष्टि की उत्पत्ति के कारण हैं। हमारे आंख, नाक, कान आदि उनकी रचना है अतः इन्द्रियों द्वारा उन्हें जाना नहीं जा सकता। अब रही मन, बुद्धि की बात। हम सभी देखते हैं कि मरे हुए व्यक्ति का ब्रेन बाहर नहीं निकल जाता। वह अन्दर ही रहता है फिर भी वह मनुष्य सोच विचार नहीं पता। यानी विचार शक्ति और तर्क शक्ति का कारण उसका जीवन तत्व है (उसे ही परमेश्वर कह रहे हैं हम)। आत्मा कारण है, बुद्धि उसका कार्य या प्रभाव। तो फिर बुद्धि से आत्मा को कैसे

जान सकत हैं? कुल मिलाकर तर्क शास्त्र से हम यही सिद्ध कर सकते हैं कि तर्क से परमात्मा को सिद्ध करना असंभव है।

भगवान कहते हैं कि तुम मेरे जन्म और प्रारम्भ की खोजबीन में समय व्यर्थ न गंवाओ। मुझे अजन्मा और अनादि मान लो। अतीत को नहीं, वर्तमान को देखो। मैं कैसे हुआ, कहां से आया, यह छोड़ो। अभी मैं क्या प्रतीत होता हूं उस पर ध्यान केन्द्रित करो। मुझे लोक महेश्वर के रूप में जानो।

एक सेठ जी हैं और एक उनका मुनीम है। मुनीम सुबह-सुबह गद्दी पर बैठ जाता है और उदारता पूर्वक जिसे जो चाहिए वह बांटता है और लोग सेठ जी की वाहवाही करते हैं और उन्हें दुआएं देते हुए अपने घर चले जाते हैं। दिया तो उन्हें मुनीम ने था। पर मुनीम की उदारता की वाह-वाही क्यों नहीं हुई? क्योंकि सब जानते हैं कि मालिक सेठ जी हैं। सारा दान उन्हीं के इशारे पर हो रहा है। यदि हम मुनीम जी से कहें कि 'आप तो बड़े अच्छे हैं, मुझे आप अपना नौकर रख लीजिए।' तो इसमें हमारी मूर्खता है। नौकरी करनी है तो सेठ जी की करें। भले वे हमें मुनीम जी के अधीन नियुक्त कर दें। लेकिन हम रहेंगे सेठ जी के ही चाकर।

भगवान को भी समस्त लोकों के मालिक के रूप में पहचानना सीख लें। इससे संसार के प्रति हमारी बुद्धि निर्मल हो जाएगी। हम असम्मूढ यानी मोह रूपी मूढ़ता से रहित हो जाएंगे और समस्त पापों से मुक्त हो जाएंगे।

अभी तो होता यह है कि हम समझते हैं सुरेश चन्द्र बहुत भला है। उसने हमारे ऊपर बहुत उपकार किए हैं। लेकिन मानिक चन्द्र बहुत दुष्ट हैं। हमें सुरेश चन्द्र से राग होता है और मानिक चन्द्र से द्वेष। एक के अहसानों का बोझ हमें सुख से जीने नहीं देता, दूसरे से बदला लेने की आग हमें दिन रात जलाती है। हम मानो महान पापी की भांति नर्क में जी रहे हैं।

सुरेश चन्द्र हो या मानिक चन्द्र अथवा प्रताप चन्द्र। सबका मालिक वही भगवान है जो हमारा भी मालिक है। वही हममें बैठा हुआ अच्छा या बुरा काम कर रहा है। न कोई कर्ता हैं, न भोक्ता। ऐसा यदि समझ में आ जाए तो न किसी के प्रति राग रहेगा न किसी के प्रति द्वेष। न एहसानों का बोझ होगा न बदले की आग भड़केगी। हम उन्मुक्त (सभी पापों से मुक्त)

होकर जी पाएंगे। भगवान ऐसी ही कल्याणकारी दृष्टि हमें दिलाना चाहते हैं दसवें अध्याय में। भगवान कैसे सर्वलोक महेश्वर हैं? वे बताते हैं-

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।।४।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।।५।।

बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुख, भव, अभाव, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, यश और अपशय-प्राणियों के ये अनेक प्रकार के अलग-अलग भाव मेरे से ही होते हैं।

यहां भगवान बता रहे हैं कि वे किस प्रकार कारण रूप से सभी व्यक्तियों में कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत दोनों श्लोकों में जितने भाव गिनाए गए हैं वे तभी तक विद्यमान हैं जब तक चेतना है। चैतन्य रूप परमात्मा के बिना हमारी बुद्धि अपने ही हाथ और पांव में फर्क नहीं समझ सकती। हमारी पीएचडी की डिग्री कोई काम नहीं आ सकती। यदि हम अपने को मोह रहित समझते हैं तो इसका कारण भी परमात्मा ही है। हम किसी को क्षमा कर सकते हैं तो वह भी परमात्मा द्वारा दी गई शक्ति ही है। सत्य भी कहते हैं तो उसी की शक्ति से। हम अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण करते हैं तो गौरव उसी का है, शम यानी भोगों की आन्तरिक लालसा पर नियंत्रण भी करते हैं तो अपने आप को महान समझ कर फूलने की जरूरत नहीं। यह शक्ति भी हमारे लिए भगवान का ही प्रसाद है। इसी प्रकार और भी भावों को भगवान ने इन दो श्लोकों में गिनाया है जो हमारी जीवन्तता के प्रतीक हैं, जिन पर हम इतराए चलते हैं। लेकिन यह सच है कि हमारा कुछ नहीं। तारीफ तो उसी लोक महेश्वर की है जिसने इन भावनाओं को बनाया। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि भगवान ने केवल गुण ही गिनाए हैं अवगुण नहीं। वास्तव में तो अच्छे भाव हों या बुरे, जब वे सर्वलोक महेश्वर हैं तो सभी को उत्पन्न करने वाले वे ही हैं पर जैसा कि इस अध्याय की भूमिका में बताया गया है कि भगवान पहले सरल अक्षर सिखाएंगे फिर संयुक्ताक्षर। 'भय अभय च', इस

'च' के प्रयोग में सारे विपरीत भाव भी छुपे हैं लेकिन स्पष्ट रूप से सद्भाव इसी लिए गिनाए हैं कि जिस व्यक्ति में ये सब गुण हों उसे परमात्मा की विभूति के रूप में हमें पहचानना हमारे लिए सरल होगा।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।६।।

सात महर्षि तथा उनसे भी पूर्व में होने वाले चार (सनकादि) तथा मनु- ये सबके सब मेरे मन से पैदा हुए हैं और मेरे भाव में रहने वाले हैं जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है।

पिछले दो श्लोकों में भाव रूप से बीस विभूतियां बताने के पश्चात अब इस श्लोक में व्यक्ति रूप से पच्चीस विभूतियां बता रहे हैं जो कि इस प्राणी जगत में विशेष प्रभावशाली हैं तथा जगत के कारण हैं। सप्त ऋषि मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ हैं। ये वेदों के आचार्य और मंत्रों को प्रकट करने वाले माने गए हैं। प्रजापति द्वारा ये धर्म के संचालन के लिए उत्पन्न किए गए हैं अतः इन्हें लोक महेश्वर का मानस पुत्र यानी उनके संकल्प से उत्पन्न कहा जाएगा। सारा लोक उन्हें आचार्य रूप से मानता है अतः लोक को उनकी प्रजा कहना उचित ही है।

धर्म की प्रतिष्ठापना की समुचित व्यवस्था कर लेने के बाद प्रजापिता के मन में सृष्टि के प्रसार का भाव आया। सबसे पहले उनके संकल्प से चार सनकादि हुए जिन्हें उनका मानस पुत्र कहा जाता है। जन्म ग्रहण करते ही इन्होंने ब्रह्मा जी से ज्ञान की याचना की। ब्रह्मा जी द्वारा तत्व ज्ञान का बोध करा देने के बाद ये सृष्टि के प्रसार से उदासीन हो गए और बाल बैरागी बन गए। तब ब्रह्मा जी ने चौदह मनु उत्पन्न किए जिनके ऊपर सृष्टि के प्रसार का भार था। ये सभी ब्रह्मा जी की आज्ञा से प्राणियों के उत्पत्ति की कारण बने। अतः संसार को उनकी प्रजा कहा गया है।

सप्त ऋषि, चार सनकादि तथा चौदह मनुओं का उपरोक्त विवरण पौराणिक है जो कथा द्वारा हमें समझाता है कि समस्त सृष्टि के मूल प्रवर्तक परमात्मा ही हैं। पौराणिक चरित्र प्रतीकात्मक हैं। सप्त ऋषि पांच तन्मात्राओं

और मन बुद्धि के प्रतीक हैं। तन्मात्रा अर्थात् संवेदनाएं उत्पन्न करने वाले समस्त पदार्थ और मन बुद्धि अर्थात् उनको ग्रहण करने की क्षमता। इन्हें भगवान अपना मानस पुत्र बता रहे हैं जिससे तात्पर्य यही है कि संसार की समस्त वस्तुएं और उनके संवेग का मूल कारण आत्मा ही है। इसी प्रकार चार सनकादि हमारे अन्तःकरण यानी मन बुद्धि चित्त और अहंकार के प्रतीक हैं। तात्पर्य यह है कि केवल बाहरी नहीं, आंतरिक जगत भी परमात्मा का ही रूप है।

मनु हमारी सृजन शक्ति के प्रतीक हैं और हमारी सृजन शक्ति ही परमात्मा की देन है तो फिर इतराने का सवाल ही कहां उठता है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है, यह मेरी कलाकृति है, यह मेरी रचना है।

इस प्रकार हम विभूतियों का ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त लें तो हमारा जीवन ही बदल जाएगा। इसी आशय से भगवान कह रहे हैं-

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।७।।

जो मनुष्य मेरी इस विभूति और योग को तत्वतः जान लेता है वह अविचल योग से युक्त हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है।

भगवान को अलग और संसार को अलग मानकर व्यवहार करने वाला अज्ञानी है। जो समस्त प्राणियों को भगवान की विभूति के रूप में जान जाता है वही भगवान को वास्तव में तत्वरूप से यानी पूरी तरह जानता है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही उसका ईश्वर से योग अविकम्प हो जाता है। समाधि में तो ईश्वर से योग होता ही है, समाधि टूटने के बाद भी जब संसार में व्यवहार करता है तब भी प्रत्येक में परमात्मा का भाव होने के कारण वह परमात्मा से किसी न किसी रूप से जुड़ा ही रहता है।

गीता में भगवान ने योग की परिभाषा देते हुए कहा था-**'समत्वं योग उच्यते',** यानी समता ही योग है। इस समता रूपी योग में दृढ़ता तभी आएगी जब हमें सब कुछ एक जैसा लगेगा और अपना ही लगेगा। हम एक मनुष्य और पशु में फर्क कर सकते हैं, एक भारतीय और एक अभारतीय हमारे

सामने खड़े हों तब भी हमारी दृष्टि और व्यवहार में भेदभाव आ सकता है। यदि दो व्यक्तियों में एक हमारे लिए अनजान और दूसरा निकट संबंधी हो तब भी यदि मदद करने का अवसर आ जाए तो हम संबंधी को विशेष रूप से सहायता देने का लोभ छोड़ नहीं पाएंगे। यदि दोनों अपने ही पुत्र हों तब समानता का व्यवहार अपेक्षाकृत सरल होगा लेकिन उसमें भी एक सदाचारी और कर्त्तव्यनिष्ठ और दूसरा नालायक हो तो? हमारी समता का विकम्पित होना अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन जो विभूति योगी है उसकी दृष्टि तो बाहरी रूप, रंग, आकृति, नाम या शारीरिक संबन्धों पर जाती नहीं। उसे तो सर्वत्र परमात्मा की ही ज्योति दिखाई देती है। यदि सभी कुछ एक दम एक जैसा क्या कहें, एक ही नजर आए तो फिर समता रूपी योग अविकम्पित होना ही है इसमें संशय का प्रश्न ही कहां?

यदि यह विभूति योग इतना प्रभावशाली है कि हमें योग में अविचलता के साथ प्रतिष्ठित कर देता है तो स्वाभाविक ही हमारे मन में जिज्ञासा होगी कि विभूति योग की प्राप्ति के लिए हम क्या करें? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान कहते हैं-

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

मैं सबका प्रभाव (मूल कारण) हूं और मेरे में ही सारा संसार प्रवृत्त हो रहा है- ऐसा मानते हुए ही ज्ञानी जन मुझमें भाव समन्वित होकर मेरा भजन करते हैं।

यहां भगवान बता रहे हैं कि साधक संसार को कैसे देखे? ऐसे देखे कि संसार में जो कुछ क्रिया, पदार्थ, घटना आदि है वह सब भगवान का ही रूप है। चाहे उत्पत्ति हो चाहे संहार, चाहे अनुकूलता प्रतीत हो चाहे प्रतिकूलता, चाहे अमृत हो या मृत्यु, चाहे स्वर्ग हो या नरक सब कुछ भगवान की लीला है। संसार में तरह-तरह के भाव रखने वाले प्राणी हैं। कहीं कोई रो रहा है कहीं कोई हंस रहा है, कहीं लड़ाई हो रही है कहीं प्रेम, कहीं सेवा है कहीं स्वार्थ लोलुपता दिखाई दे रही है। कहीं कोई जन्म ले रहा है,

कहीं कोई मर रहा है। कहीं सत्संग हो रहा है, कहीं बकवास। ये जो विविध प्रकार की क्रियाएं हो रही हैं ये सब भगवान की लीलाएं हैं। लीलाएं करने वाले भी भगवान के ही स्वरूप हैं और उनके भाव में भी भगवान ही हैं जो विशेष व्यवहार करवा रहे हैं। इस प्रकार साधक की दृष्टि हमेशा भगवान पर रहेगी और वह भाव विभोर होकर भजन करेगा। यह भजन कैसा होगा? भगवान बताते हैं?

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।९।।

मेरे में चित्त वाले, मेरे में प्राणों को अर्पण करने वाले (भक्तजन) आपस में (मेरे गुण प्रभाव आदि को) जानते हुए, उनका कथन करते हुए निरन्तर संतुष्ट रहते हैं और आनन्दित रहते हैं।

यहां भगवान ने समस्त सृष्टि में प्रभु को देखते हुए भजन करने वाले साधक की अवस्था का वर्णन किया है और इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान भजन किसको मानते हैं। भजन के लिए शोर करने की आवश्यकता नहीं, इसके लिए सुरीला गला और शास्त्रीय संगीत का ज्ञान भी आवश्यक नहीं। भजन के अर्न्तगत तो निम्नलिखित बातें आती है–

मच्चिताः– अर्थात् मुझमें चित्त लगाना। चित्त के अन्तर्गत मन और बुद्धि दोनों आ जाते हैं। भगवान जब मच्चिताः कहते हैं तो उनका अभ्रिप्राय यह है कि मन से मुझे प्यार करो और बुद्धि से मेरा विचार करो। साधारण संसारी मन से पत्नी बच्चों को प्यार करते हैं, बुद्धि से धन कमाने और भोग भोगने का विचार करते हैं। कुछ विशिष्ट समझने वाले व्यक्ति विचार तो भगवान का करते हैं पर मन अपने परिवार में ही रखते हैं। भगवान कहते हैं कि इससे बात नहीं बनेगी। प्रेम भी मुझसे ही करो चिन्तन भी मेरा ही करो। तब तुम जो करोगे वह भजन होगा।

मद्गत् प्राणाः– अर्थात् अपने प्राणों को मुझमें लगाओ। प्राणों को मेरे अन्दर रखो अपने शरीर में मत रखो। हमें अपने प्राण सबसे अधिक प्यारे हैं। सांस के बिना जैसे हम नहीं रह सकते वैसे प्रभु के भजन बिना रहने

की कल्पना छोड़ दें। भजन का सच्चा भाव यही है।

बोधयन्तः परस्परम् :- जब दो दीवाने मिलते है तब न तो अमेरिका जाते हैं न जापान। वे तो एक दूसरे के दिल का हाल सुनते सुनाते हैं। पर दिल में यदि कन्हैया लाल ही बसा हो तो? वे भला और दूसरी बातें करेंगे भी कैसे? बस अपने प्रियतम प्राणेश की लीलाओं की चर्चा और उनका रहस्य एक दूसरे को बताते रहते हैं। दीपक तले अंधेरा होता है लेकिन यदि दो दीपक एक दूसरे के सामने मुंह कर कर रख दिये जाएं तो दोनों का अंधकार मिट जाता है। इसी प्रकार जब दो भक्त आपस में चर्चा करते हैं तो दोनों को बोध होता है, दोनों के संशय मिटते हैं।

कथयन्तश्च मां नित्यम्- भगवान के प्रेमी को तो हर वक्त उन्हीं के बारे में बातें करने की इच्छा होती है। कोई कहने वाला मिले तो श्रोता बन गए, कोई सुनने वाला मिले तो वक्ता बन गए। जैसे पिकनिक करके आए दो मित्र आने के बाद भी घंटों उसी की बातें करते रहते हैं। जो कुछ घटा वह दोनों देखा था। वे एक दूसरे की जानकारी नहीं बढ़ा रहे, वे तो केवल इसलिए बात कर रहे हैं कि उसमें उन्हें मजा आता है। भगवत् चर्चा में मजा आने लगे तो समझें कि भजन हो रहा है। अंत में भगवान कह रहे हैं कि भजन करने वाले ऐसे भक्त सदा आत्म संतुष्ट और आनन्द मग्न रहते हैं। वे रमे रहते हैं, दूसरी किसी बात की उन्हें सुध नहीं होती।

भगवान के प्रति भक्त का व्यवहार बताने के बाद अब भगवान का भक्त के प्रति क्या व्यवहार होता है, यह भी देखें।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।१०।।

उस नित्य निरन्तर मेरे में लगे हुए और प्रेम पूर्वक मेरा भजन करने वाले को मैं वह बुद्धियोग देता हूं जिससे मेरी प्राप्ति हो जाती है।

जो सतत् भगवान से जुड़े रहकर प्रेम के साथ पिछले श्लोक में बताए गए तरीके से भजन करते हैं, उसे भगवान प्रीति पूर्वक बुद्धि योग देते हैं और

बुद्धि योग के फलस्वरूप भक्त को भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

बुद्धियोग की चर्चा भगवान ने दूसरे अध्याय में की थी। उन्होंने बताया था कि बुद्धियोग पाप पुण्य से छुड़ा देता है। बुद्धियोग कर्म से उत्पन्न हुए बंधनों से मुक्त कर देता है जिससे चित्त निरन्तर परमात्मा में लग जाता है। बुद्धि योग का अर्थ है संसार में हम जो कुछ कर रहे हैं उसे बुद्धिमानी पूर्वक करना। असल में बेअक्ली के कारण ही भगवान अप्राप्त हैं और अक्लमंदी से ही भगवान मिलते हैं। इसके लिए बुद्धि भी चाहिए और बुद्धि का परमात्मा से योग भी चाहिए। किसी की बुद्धि धन के चक्कर में रहती है, लेकिन बुद्धियोगी तो धन कमाते हुए भी, कुर्सी पर बैठे हुए भी, चक्कर में परमात्मा के ही रहता है। वह यही सोचता है कि इस मानव तन का सदुपयोग कैसे किया जाए जिससे अखंड शांति की प्राप्ति हो। यहीं तो बात अक्ल-बेअक्ल की आ जाती है। सुख-शांति किसे नहीं चाहिए? पर चाहिए सुख-शांति और दौड़ रहे हैं धन के पीछे। कहते भी जाते हैं- धन में क्या सुख पड़ा है, लेकिन दौड़ में तेजी आती जाती है। सुख-शांति को लक्ष्य और धन को साधन न मानकर धन को ही लक्ष्य मान लेते हैं तो सुख-शांति किनारे बैठ जाती है। सारी बुद्धिमानी हवा हो जाती है।

इसीलिए भगवान कहते हैं, आप बुद्धिमान मत बनिये। आप बुद्धिवादी भी मत बनिए, क्योंकि बुद्धिवादी तो बुद्धि की बातें भर करते हैं। आप बुद्धिजीवी भी मत बनिए। बुद्धिजीवी का अर्थ है जो बुद्धि को बेच कर जीविका चलाए। आप बुद्धियोगी बनिए। आप तो कर्म को ऐसी बुद्धि के साथ करिए कि लक्ष्य से भटक न जाएं। आपके कर्म अंत:करण की शुद्धि करे, उसमें वासना का कचरा न भरें। आप पान की दुकान में लड्डू खोजने की भूल न करें।

इस श्लोक में भगवान ने ज्ञान-भक्ति-कर्म का समन्वय भी कर दिया है और अपने भक्तों को पक्का आश्वासन भी दे दिया है कि यदि वे शारीरिक या बौद्धिक दृष्टि से अधिक सक्षम नहीं है तो भी चिंता की कोई बात नहीं। कर्मयोगी तो निष्काम कर्म के बल पर भगवान को प्राप्त करता है और ज्ञान योगी अपने तात्विक स्वरूप यानि आत्मा के विषय में चिंतन करता है और ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि आत्मा अजर, अविनाशी, नित्य है तथा एक ही आत्मा सभी प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है। कर्मयोगी और ज्ञानयोगी का

तो अपना बल है, लेकिन भक्त के बल तो स्वयं भगवान हैं। उसे यह सोचने की ही जरूरत नहीं कि लक्ष्य क्या है, उसे प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए, क्या नहीं। कर्मयोगी और ज्ञानयोगी के लिए तो परिश्रम है, साधना है, तप है, लेकिन भक्त को तो मौज ही मौज है। उसे बस भगवान से प्रेम करना है- **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्।'** वह शरण में आया और भगवान से उसे अपनाया। इसके बाद का सारा जिम्मा उनका है। वे स्वयं देखेंगे कि भक्त को कैसे उनकी प्राप्ति हो। भगवान यदि जिम्मा ले लें किसी काम का, तो उसकी बराबरी क्या किसी मानव का बल, उसकी बुद्धि अथवा साधना कर सकती है?

अगले श्लोक में भगवान बताते हैं कि यह बुद्धि योग वे किस प्रकार देते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।११।।

उन भक्तों पर कृपा करने के लिए ही उनके स्वरूप में रहने वाला मैं उनके अज्ञानजन्य अंधकार को दैपीप्यमान ज्ञान दीपक के द्वारा सर्वथा नष्ट कर देता हूं।

कभी-कभी किसी वस्तु के होते हुए भी हम उसको देख-समझ नहीं पाते जब तक कि कोई खास कार्य न किया जाए। जैसे हमारी टेबल पर चाभी पड़ी हो और हम टटोल कर खोज रहे हों। न मिलने पर कोई बत्ती जला दें और तुरंत चाबी दिखे तो हम यह नहीं कहेंगे कि प्रकाश ने चाबी उत्पन्न कर दी। हम तो यही कहेंगे कि उस व्यक्ति की कृपा से अंधकार मिट गया, प्रकाश हो गया और हमें चाबी की पहचान हो गई।

चाबी तो एक बाहरी वस्तु है। आत्मा तो हमारे अन्दर ही है। वह तो हमारा तात्विक स्वरूप ही है लेकिन अज्ञान के अंधकार के कारण हम इधर-उधर टटोल रहे हैं। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारों के भी चक्कर काटते हैं पर उसकी तेजस्विता को समझ नहीं पाते। ऐसा प्रतीत होता है मानो जलते हुए बल्ब पर दस-बीस कम्बल डाल दिए गए हों। बल्ब लाने और जलाने की

जरूरत नहीं। कम्बल हटते ही बल्ब भासित हो उठेगा। मोह-माया, स्वार्थ, अहंकार आदि के कम्बलों ने आत्मा के प्रकाश को ढंक दिया है। गीता में जितनी साधनाएं बताई गई हैं वे तो बस इन कम्बलों को हटाने की प्रक्रिया हैं। भगवान को कहीं से बुलाकर मन मंदिर में प्रतिष्ठित करने की भी आवश्यकता नहीं। वे तो नित्यप्रतिष्ठित हैं। फिर भी जब हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि मेरे मन मंदिर में बस जाओ तो हम स्वयं अपने को याद दिलाते हैं कि भगवान के बसने का स्थान मन है। अत: इसे स्वच्छ और पवित्र रखना आवश्यक है। तब हमारी कोशिश होने लगती है कि मन के भाव शुद्ध हों। इस प्रकार अंत:करण की शुद्धि हुई नहीं कि भगवान प्रकट होने लगते हैं।

यहां तो भगवान यह कह रहे हैं कि भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिए मैं ज्ञान दीप जला देता हूं। तो क्या भगवान पक्षपाती हैं? नहीं। भगवान तो करुणामय हैं ही। उनकी अनुकम्पा तो सबके लिए बरसती है। वे तो कृपा किए बिना रह ही नहीं सकते। लेकिन हम ही हैं जो उनकी कृपा को पहचान नहीं पाते। हम खिड़की बंद कर लें तो सूर्य क्या कर सकता है। खिड़की खोलते ही उसकी कृपा यानी प्रकाश में नहा उठते हैं।

भगवान की कृपा को न समझ पाने से उसका लाभ भी हम उठा नहीं पाते लेकिन जो भगवान का नित्य भजन करते हैं उनको बुद्धियोग की प्राप्ति हो जाती है। उनकी बुद्धि ऐसी परिमार्जित हो जाती है कि प्रतिकूल परिस्थिति में भी वे यह समझते हैं कि यह भगवान के द्वारा कृपापूर्वक उनके कल्याण के लिए बनाई गई योजना का अंग है। जैसे हम अपने बच्चे को पढ़ने के लिए सुबह चार बजे उठाते हैं तो उसे कष्ट तो बहुत ही होता है पर हम उसे समझाते हैं- 'बेटा, यह छात्र जीवन सीखने के लिए है। यह समय फिर लौटकर नहीं आएगा। तुम्हें कष्ट तो हो रहा है पर कुछ दिन की बात है। परीक्षा की घड़ी है तुम्हारी।' जिस बच्चे को बात समझ में आ जाती है वह कष्ट में भी दुखी नहीं होता। लाभ भी उसी को मिलता है।

हमारे जीवन में दु:ख आता है तो हम भगवान को कोसते हैं। सुख आता है तो अपनी वाहवाही करते हैं। दोनों ही बातें हमारे लिए कल्याणकारी नहीं। भगवान के भक्त के जीवन में जब दु:ख आता है तो उसे वह भगवान की कृपा समझता है और सुख आता है तो उसे भगवान की दया समझता है।

इसी निर्मल बुद्धि को पाना ही बुद्धियोग है। सच पूछो तो भगवान की सबसे बड़ी कृपा यही है कि हमें उसकी कृपा का अनुभव होने लग जाए। अभी तो हम भ्रम में जी रहे हैं। उसकी नित्य उपलब्ध कृपा का लाभ नहीं उठा पा रहे। अतः अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान दीपक के आलोकित हो जाने पर बुद्धि निर्मल होते ही हम अपनी आत्मा के दैदीप्यमान स्वरूप को ठीक-ठीक पहचान पाएंगे।

अर्जुन के अज्ञान को दूर करने और ज्ञान दीप जलाने के प्रयत्न में ही भगवान अपने प्रकाश मान स्वरूप का वर्णन इतने विस्तार से कर रहे थे। अर्जुन को बात सही तो जान पड़ती है। उसे लगता तो है कि भगवान मजाक के मूड में यह सब नहीं कह रहे हैं। पर थोड़ी-थोड़ी समझ में आने से वह संतुष्ट नहीं होता। उसे स्पष्ट जानने की जिज्ञासा होती है।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।१२।।
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।।१३।।

अर्जुन बोले- परम ब्रह्म, परम पवित्र आप ही हैं। आप शाश्वत, दिव्य पुरुष, आदिदेव, अजन्मा और विभु (व्यापक) हैं- ऐसा सबके सब ऋषि, देवर्षि नारद, असित, देवल तथा व्यास कहते हैं और स्वयं आप भी मेरे प्रति कह रहे हैं।

भगवान ने अपने स्वरूप और तत्व के विषय में जो कुछ बताया वह सब अर्जुन को बौद्धिक दृष्टि से समझ में आ गया। इन श्लोकों में यह भी पता चलता है कि ये शब्द उसके लिए नए नहीं थे। अर्जुन राजपुत्र था। तत्कालीन परम्परा के अनुसार उसने गुरु के निर्देशन में समस्त शास्त्रों का अध्ययन भी किया था। उसके गुरु ने भी परब्रह्म, परमधाम, परमात्मा, अज, अविनाशी, शाश्वत पुरुष, आदिदेव आदि शब्दों का अर्थ बताया होगा। परन्तु कोरा ज्ञान

किसी काम नहीं आता। वह तो परम्परा के अनुसार पढ़ लिया जाता है और फिर वे पुस्तकें अलमारियों की शोभा बढ़ाती हैं या आगन्तुकों को प्रभावित करने के काम आती हैं। अर्जुन को यह भी पता है कि नारद, देवल, व्यास, असित आदि ऋषियों का क्या मत है। फिर भी वह भगवान श्री कृष्ण को पहचान नहीं पाया क्योंकि शाब्दिक जानकारी और तत्व ज्ञान सर्वथा भिन्न बातें हैं।

भगवान भी वही कह रहे हैं जो नारद, व्यास आदि ऋषि कहते हैं यानी परमात्मा अज, अविनाशी, परम धाम, परम पवित्र, परम पुरुष, आदिदेव और सर्व व्यापक है। अन्तर केवल यही है कि भगवान परमात्मा के लिए तृतीय पुरुष नहीं, प्रथम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग करते हैं। वे यह नहीं कहते कि परमात्मा अजन्मा है। वे कहते हैं, मैं अजन्मा हूं।' यही बात अर्जुन को चमत्कृत कर गई। अर्जुन ने कहा-

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।।१४।।

हे केशव मुझसे आपने जो कुछ कहा उसे मैं सत्य मानता हूं। हे भगवान! आपके प्रकट होने को न तो देवता जानते हैं न दानव जानते हैं।

अर्जुन को भगवान की बात पर अविश्वास नहीं। उसकी श्रद्धा प्रबल है। किन्तु इस नई बात पर उसकी बुद्धि हैरान है। उसने अब तक श्री कृष्ण को अपने प्रिय सखा, फुफेरे भाई, साले, हितैषी, सलाहकार और अपने संरक्षक के रूप में जाना था। एकाएक उनके परमात्म रूप का बोध हुआ तो उसकी जबान लड़खड़ाने लगी। उसके शब्दों में जिज्ञासा के साथ-साथ स्तुति का भाव आ गया। उसे लगा सचमुच श्री कृष्ण को यथार्थ रूप से जानना असम्भव है।

कुछ देर पहले स्वयं भगवान ने इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया था 'मुझे देवता भी नहीं जानते।' अब अर्जुन कह रहा है- आपको देवता और दानव भी नहीं जानते! यह स्पष्ट संकेत देता है कि अर्जुन कितना चमत्कृत है। अर्जुन की स्तुति चल रही है-

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ।।१५।।

हे भूतभावन! हे भूतेश! हे देवदेव! हे जगत्पते! हे पुरुषोत्तम! आप स्वयं ही अपने आप को अपने से जानते हैं।

इस श्लोक में एक साथ अर्जुन ने पांच सम्बोधनों का प्रयोग किया है। इनमें केशव, कृष्ण, वासुदेव आदि पुराने संबोधन कोई भी नहीं है। यहां जिनका प्रयोग हुआ है वे सारे संबोधन तो ब्रह्म को इंगित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। इससे पता चलता है कि अर्जुन को विश्वास हुआ तब उसकी श्रद्धा जागी। यह अन्धविश्वास नहीं है और श्रद्धा जागने के बाद वह भाव विभोर है। उसे लगता है कि उसने जो कुछ जितना कुछ जाना है वह भी पूर्ण नहीं हो सकता। भगवान को कोई नहीं जान सकता। वे स्वयं ही स्वयं को समझ सकते हैं।

साधारण व्यक्ति तो कठिन प्रतीत होने वाली बातों को समझने के पचड़े में ही नहीं पड़ना चाहते वे तो दुर्लभ जान पड़ने वाली वस्तुओं के लिए परिश्रम ही नहीं करते लेकिन जो जिज्ञासु है, जो जुझारु प्रवृत्ति के हैं, उन्हें तो हर कठिनाई और अधिक उत्साहित करती है। जिसे जानना मुश्किल हो उसके प्रति तो उनकी जिज्ञासा और 'जान कर ही रहूंगा' का संकल्प और अधिक दृढ़ हो जाता है।

अर्जुन को ज्ञान का आभास हो गया है। अब वह पूरी तरह समझे, जाने, पहचाने बिना छोड़ने वाला नहीं। अभी तक तो वह स्तुति कर रहा था अब अपनी मांग प्रस्तुत कर रहा है।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकान् इमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।।१६।।

जिन विभूतियों से आप इन सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं उन सभी अपनी दिव्य विभूतियों का सम्पूर्णता से वर्णन करने में आप ही समर्थ हैं।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।१७।।

हे योगिन्! हरदम चिन्तन करता हुआ मैं आपको कैसे जानूं? और हे भगवान! किन-किन भावों में आप मेरे द्वारा चिन्तन किए जा सकते हैं?

अर्जुन की स्थिति उस शहरी बच्चे जैसी है जो पहली बार देहात में कुम्हार को चाक पर मिट्टी के बरतन बनाते देखता है और घूमते चाक पर मिट्टी के लोंदे को आकृति पाते देख कर चमत्कृत हो जाता है। उसे अत्यन्त उत्सुक जान कुम्हार अपने झोपड़े में ले जाता है जहां तरह-तरह के रंग किए हुए बरतन, मूर्ति, जानवर, चिड़िया आदि रखे हैं।

बालक ने मिट्टी का बरतन बनते देखा था। अब उसने चिड़िया की ओर उंगली दिखा कर पूछा-'यह किस चीज से बनी है?'

कुम्हार ने उत्तर दिया-'मिट्टी से'

'अच्छा! और यह बन्दर?'

'यह भी मिट्टी से।'

'यह औरत?'

'यह भी मिट्टी से।'

'अरे! इसकी साड़ी भी मिट्टी से बनी है?'

हां, हां। इसकी साड़ी, इसके गहने, इसकी चप्पल सब कुछ मिट्टी से बने हैं।'

और ये महात्मा गांधी भी मिट्टी के हैं?'

हां।

अरे! अच्छा और क्या-क्या मिट्टी से बना है?'

'यह भी, यह भी, यह भी, यह भी' कुम्हार उंगलियों से एक-एक वस्तु की ओर इशारा करता हुआ थक जाता है और अंत में कहता है- 'तुम्हें मैं क्या-क्या बताऊं! तुम यहां चारों तरफ जो कुछ देख रहे हो वह मिट्टी से ही बना है और इसके अलावा भी मिट्टी से बनी असंख्य वस्तुएं होती हैं जिन्हें गिनाना संभव नहीं।'

कुछ ऐसी ही गाथा है इस दसवें अध्याय की। अर्जुन को जब पता चला कि सृष्टि की वस्तुओं और भावों के तत्व रूप में भगवान ही हैं तो उसे ऐसा आश्चर्य हुआ कि वह पूछ बैठा- भगवान आप और किस-किस भाव और रूप में प्रकट होते हैं? मैं आपको कैसे पहचान पाऊंगा? आप बताइए कि आप किस-किस में हैं? और आगे देखेंगे कि कुम्हार की भांति इसमें, इसमें बताते-बताते अंत में भगवान थक कर कहते हैं- 'अर्जुन मैं कहां तक गिनाऊं? मेरी विभूतियों का अंत ही नहीं है।

प्रश्न पूछने के बाद अर्जुन को लगा कि भगवान पहले ही तो बता चुके हैं कि मैं ही मणियों के सूत्र के रूप में सबको पिरोए हुए हूं और मुझसे अलग तीनों लोकों में किंचित मात्र भी कुछ नहीं। इसके बाद और पूछने का रह ही क्या गया? फिर भी वह विस्तार से सुनना चाहता है तो इसके लिए भगवान से विनम्र निवेदन करना चाहिए।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।।१८।।

हे जनार्दन! आप अपने योग (सामर्थ्य) को और विभूतियों को फिर से विस्तार से कहिए क्योंकि आपके अमृतमय वचन सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नहीं हो रही है।

अर्जुन के इन कथनों से स्पष्ट होता है कि भगवान ने अब तक अपने विषय में जो कुछ बताया वह भैंस के आगे बीन बजाना नहीं था। अर्जुन ने ध्यान पूर्वक उन्हें सुना और समझा है। इसके फलस्वरूप ही उसकी रुचि और जिज्ञासा इतनी जागृत हुई कि वह और विस्तार से सुनना चाहता है। जगत में सब भूतों में भगवान के दर्शन हों यह बात उसे इतनी सुंदर, इतनी रोचक, इतनी मन भावन और इतनी कल्याणकारी मालूम देती है कि सुन-सुनकर उसकी तृप्ति नहीं हो रही।

बहुधा जो जिज्ञासु और विचारशील प्रवृत्ति के लोग होते हैं वे नई-नई बातों को जानने की जिज्ञासा से सत्संग में जाते हैं। यदि वक्ता अच्छा हो तो उन्हें वे बातें इतनी रुचिकर लगती है कि सुनते-सनते वे अघाते नहीं। श्री

कृष्ण जैसा वक्ता हो तो सत्संग में भी रस बरसना स्वाभाविक ही है इसीलिए अर्जुन की चाह बढ़ती जा रही है। दूसरी बात यह है कि अर्जुन श्रेय का साधन चाहते हैं। यह बात उन्होंने एकदम शुरू में ही कही थी कि 'भगवान आप ही वैसी बात कहिए जिसमें मेरा कल्याण हो।' अब बातों के क्रम में जब भगवान ने अपने प्रभाव और महिमा (विभूति) का वर्णन किया और बताया कि विभूति को तत्व से जानने पर भक्ति दृढ़ होती है और अंत में बुद्धि योग के द्वारा भगवत् प्राप्ति हो जाती है तो अर्जुन को यह बात बहुत सरल लगी कि मुझे कोई नया काम नहीं करना है। संसार की जिन-जिन वस्तुओं और प्राणियों में किसी विशेषता के कारण मेरे मन का स्वाभाविक खिंचाव होता है वहां उस विशेषता को भगवान की सामर्थ्य या उनकी महिमा मानना है। इस प्रकार जब मैं संसार को देखने लगूंगा तो संसार में रह कर लोक व्यवहार करते हुए भी मेरे मन की वृत्तियों का प्रवाह जगत के नाम रूपों में न होकर भगवान में होगा जिससे मेरी भक्ति दृढ़ हो जाएगी और मेरा कल्याण हो जाएगा। कितनी सरल बात है यह! इसलिए विस्तार से इसे पुनः बताने के लिए निवेदन करते हैं।

अर्जुन की प्रार्थना स्वीकार करके भगवान कहते है-

श्री भगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्रधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।।१९।।

श्री भगवान ने कहा- मैं अपनी विभूतियों को तेरे लिए प्रधानता से कहूंगा, क्योंकि हे कुरुश्रेष्ठ! मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है।

अर्जुन ने प्रार्थना की कि भगवान आप अपनी विभूतियों को विस्तार से बताइए और भगवान कह रहे हैं कि मैं संक्षेप में बताऊंगा। उनकी विभूतियों के विस्तार का अन्त ही नहीं है तो वे कैसे सारी विभूतियों का वर्णन कर पाएंगे? अतः वे केवल अपनी प्रधान विभूतियों की ही चर्चा करेंगे। दिव्य विभूति कहने का तात्पर्य यही है कि जहां किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना आदि में विशेषता दिखलाई देती है तो समझना चाहिए कि वह विशेषता भगवान की

ही है। वस्तु व्यक्ति के बाह्य स्वरूप को देखना लौकिकता है और उसमें निहित परमात्मा की शक्ति, सामर्थ्य और महिमा को देखना ही दिव्यता है।

अपनी विभूतियों के वर्णन का प्रारंभ करते हुए भगवान कहते हैं-

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।।२०।।

हे निद्राजयी अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य तथा अंत में भी मैं ही हूं और प्राणियों के अन्तःकरण में आत्मरूप से भी मैं ही स्थित हूं।

यहां भगवान अपनी विभूतियों का सार बता रहे हैं। किसी भी विषय की शुरूआत करते समय शिक्षक सर्वप्रथम सार रूप में उसका परिचय देता है, फिर क्रमशः एक एक बिन्दु का विस्तार करते हुए अन्त में फिर उसी सार को दुहराते हुए उपसंहार करता है। भगवान भी यही पद्धति अपना रहे हैं।

भगवान का चिंतन दो प्रकार से हो सकता है। १. हम भगवान को अपना इष्ट मान कर उनके प्रति श्रद्धा और समर्पण रखें। दिन रात उनका चिंतन करें और ऐसा प्रयास करें कि मन उनसे हटकर किसी दूसरी वस्तु में लगे ही नहीं। २. मन यदि सांसारिक वस्तुओं से आकर्षित होता हो तो उन वस्तुओं को भगवान की विशेषता समझे। ऐसा करने से उस वस्तु के साथ व्यवहार करते समय भी मन भगवान से जुड़ा रहेगा।

यह दूसरी प्रणाली ही विभूति योग है। जहां जहां वृत्ति जाए वहां-वहां भगवान ही नजर आएं इसी के लिए भगवान अपनी विभूतियों का वर्णन कर रहे हैं। उन्होंने पहले ही कह दिया है कि उनकी विभूतियों का विस्तार इतना अधिक है कि पूर्ण रूप से बताया ही नहीं जा सकता। संक्षेप में ही वे बताएंगे पर उसके पहले सबसे मोटी बात हम समझ लें कि भगवान हर वस्तु और हर प्राणी के आदि में भी हैं, मध्य में भी और अन्त में भी। अर्थात् सबकी उत्पत्ति भी उन्हीं से हुई, स्थिति भी इन्हीं से हुई है और लय भी उन्हीं में होता है। जैसे स्वर्ण के आभूषणों के गढ़े जाने के पहले भी स्वर्ण होता है,

आभूषण का रूप हो जाने पर भी स्वर्ण रहता है और गला कर उसका उसका रूप मिटा दिया जाता है तब भी तत्व रूप से स्वर्ण ही रहता है।

इस प्रकार भगवान भी सृष्टि का कारण तत्व है। इतना ही नहीं, वे सबके चैतन्य तत्व भी हैं। शरीर रहे पर आत्मा न हो तो चेतना नहीं रहती। हम देख, बोल, सुन, सोच नहीं सकते। हमारी यह चेतना शक्ति भी भगवान की ही विभूति है। इतना ही नहीं, वे सबके स्थूल तत्व भी हैं। सृष्टि में जितनी वस्तुएं दिखाई देती हैं जो चैतन्य नहीं हैं। ऐसी जड़ वस्तुओं आदि, मध्य और अन्त में भी भगवान ही हैं।

इस प्रकार स्पष्ट रूप में सृष्टि की समस्त वस्तुओं और प्राणियों को अपनी विभूति बता देने के बाद भी जब भगवान ने देखा कि अर्जुन की तृप्ति नहीं हुई तब उन्होंने सृष्टि में अपनी स्थिति की कुछ विशिष्ट उदाहरण दिए। जैसे भारत माता के पुत्र तो सभी हैं पर महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद आदि को हम राष्ट्र की विभूति बताते हैं उसी प्रकार भगवान भी अनेक वस्तुओं प्राणियों को अपनी विभूति बता रहे हैं।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।।२१।।

मैं अदिति के पुत्रों में विष्णु और प्रकाशमान वस्तुओं में किरणों वाला सूर्य हूं। मैं मरुतों में मरीची और नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूं।

विभूतियों का वर्णन पढ़ने से पहले हम एक बार फिर स्पष्ट समझ लें कि जब भगवान कहते हैं कि प्रकाशवान वस्तुओं में सूर्य मैं हूं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि बाकी प्रकाशमान वस्तुएं भगवान का स्वरूप नहीं है। टिमटिमाते दिए की लौ भी भगवान की ही ज्योति से ज्योतिर्मान है। सूर्य का उदाहरण देने का तात्पर्य यह है कि उसकी महत्ता पर हमारा ध्यान जल्दी जाता है। वह अपनी जीवन किरणें हमारे पास भेज कर हमें जगाता है, काम धाम में लगाता और ऊर्जा देता है। उसमें ही परमात्मा न दिखलाई दें तो किसमें दिखेगा? भगवान कह रहे हैं- सूर्य में तुम मेरा ही दर्शन करो।

आदित्यों में भगवान ने अपने को विष्णु बताया। अदिति के पुत्रों को आदित्य कहा गया है। इनमें वामन रूप से भगवान विष्णु प्रकट हुए थे। वामन देव का रूप इतना तेजस्वी था कि दैत्य राज बलि गुरु के मना करने पर भी सब कुछ दान करने को प्रस्तुत हो गए।

मरुत पवन, हवा, आंधी, बयार आदि के प्रतीक हैं। ऋग् वेद में मरीचि को मरुतों में मुख्य माना गया है। भगवान का तात्पर्य यह है कि बहती हुई शीतल सुरभित वायु का आनन्द लेते समय याद रखो कि ये समस्त गुण मेरी ही विभूतियां हैं। इसी प्रकार रात को आकाश में टिमटिमाते तारे बहुत सुन्दर लगते हैं लेकिन उनके बीच चन्द्रमा की शोभा ही निराली लगती है। उससे हमें रात को प्रकाश भी मिलता है और शीतलता भी। चन्द्रमा कि किरणें वनस्पतियों को पौष्टिकता भी प्रदान करती है। उसे देख कर हम भगवान को याद कर लें। जिसने ऐसा शीतल सुखदायक चन्द्रमा बनाया है वह सुख का कितना बड़ा भंडार होगा।

हम कोई भी कृति देखते हैं चाहे वह सुन्दर पुष्प हार हो, या फूलों का बगीचा अथवा सुन्दर चित्र या कोई इमारत ही क्यों न हो, हमारे उनको देखने के दो तरीके हो सकते हैं। एक तो यह कि हमारा ध्यान केवल उस वस्तु की सुन्दरता पर केन्द्रित हो, हम कहें- 'वाह! क्या चीज है।' बस। किन्तु जो सच्चे पारखी होते हैं वे सुन्दर कृति की हार्दिक प्रशंसा जब करते है तो साथ ही पूछते हैं- 'किसने बनाया इसे?' वे कहेंगे- 'वाह! क्या कलाकार है। कितनी प्रसंशा की जाये इसकी!' भगवान हमें यही दृष्टि रखने का सुझाव दे रहे हैं।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।२२।।

मैं वेदों में सामवेद हूं, देवताओं में इन्द्र हूं, इन्द्रियों में मन हूं और प्राणियों की चेतना हूं।

वेद तो चार हैं पर सामवेद की ऋचाएं गाई जाती हैं। उनमें लय और सुर हैं अतः भगवान कहते हैं कि जब सामवेद की ऋचाएं कानों में पड़े

तो याद कर लो- मैं ही हूं।

देवता जितने भी हैं उनमें प्रमुख इन्द्र है। इन्द्र का पद पाने के लिए कठोर तप करना पड़ता है। अत: यदि इन्द्र जैसा पुण्यकर्मा और वैभवशाली दिखाई दे तो याद कर लें- उनमें भी तत्व रूप से परमात्मा ही विद्यमान हैं। नेत्र, कान, नाक आदि जितनी भी इन्द्रियां हैं वे सब मन के साथ जुड़ कर ही कार्य करती है। यदि मन कहीं और हो तो आंखें सामने खड़े व्यक्ति को नहीं देख पाती। अत: जब भगवान कहते हैं कि इन्द्रियों में मन मैं हूं तो उनका तात्पर्य यही है कि सभी इन्द्रियों को कर्म करने या संवेग ग्रहण करने की शक्ति प्रदान करने वाला मैं ही हूं।

प्राणियों में चेतन तत्व परमात्मा की ही दिव्य अभिव्यक्ति है। जब तक देह में चेतना रहती है तभी तक किसी भी प्राणी की कार्यक्षमता, बुद्धि, तेज आदि की अभिव्यक्ति होती है और हम कह सकते हैं कि अमुख व्यक्ति तो साक्षात् भगवान का ही रूप है। चेतना न रहने पर सारा बल, बुद्धि, तेज समाप्त हो जाता है। आइन्सटाइन कितना महान गणितज्ञ था पर चेतना निकल जाने पर मृत आइन्सटाइन का दिमाग हालांकि अभी तक परीक्षण के लिए सुरक्षित रखा हुआ है पर वह दो और दो जोड़ कर चार नहीं बता पाता है। अत: 'भूतों में चेतना मैं हूं' कहने से भगवान का तात्पर्य है कि समस्त प्राणी मेरी ही शक्ति से संचालित होते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि मृत शरीर में भगवान नहीं रहते। उन्होंने तो पहले ही कहा है कि मैं सभी प्राणियों के आदि, मध्य और अंत में रहता हूं। पदार्थ रूप से मृत शरीर में भी भगवान की सत्ता है लेकिन उसमें वह सत्ता अपनी दिव्यता के साथ प्रकट नहीं होती। यहां जब भगवान अपनी विभूतियों का वर्णन कर रहे हैं तो वे चुन-चुन कर ऐसे ही उदाहरण दे रहे हैं जिसमें उनकी दिव्यता को पहचानना सबसे सरल है। मृत शरीर में भगवान केवल सत् रूप में तथा साधारण प्राणियों में सत् और चित् रूप में रहते हैं। यही कारण है कि हम चैतन्य तो हैं लेकिन हममें आनन्द का अभाव है। जो सम्पूर्ण रूप से परमात्मा के साथ एकात्मता का अनुभव करता है वह सच्चिदानन्द ही है अर्थात् सत् चित् और आनन्द तीनों स्वरूप उसमें विद्यमान हैं।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।।२३।।

रुद्रों में शंकर और यक्ष राक्षसों में कुबेर मैं हूं। वसुओं में पावक (अग्नि) मैं हूं और शिखर वाले पर्वतों में मेरु मैं हूं।

सृष्टि के लय के लिए जिम्मेदार ग्यारह रुद्र हैं। शंकर इनके अधिपति हैं वे और कल्याण करने वाले भी हैं- शम् करोति इति शंकर। सृष्टि की किसी वस्तु का अंत दु:ख की बात नहीं। किसी वस्तु का नाश नहीं होता। उसका तो लय होता है ताकि पुरातन के स्थान पर नवीन की सृष्टि हो सके। अत: भगवान शंकर विनाश करने वाले नहीं बल्कि लय के द्वारा कल्याण करने वाले हैं इसलिए भगवान उन्हें भी अपनी विभूति बताते हैं। यक्ष और राक्षसों के अधिपति कुबेर हैं। इन्हें धनाध्यक्ष नियुक्त किया गया है। ये भी परमात्मा की ही विभूति हैं।

देवताओं को यज्ञ की हवि पहुंचाने वाले आठ वसु हैं जिनमें अग्नि मुख्य है। इसे भी भगवान अपनी विभूति बता रहे हैं। शिखरों वाले जितने पर्वत हैं उनमें सुमेरु पर्वत मुख्य माना जाता था। इसमें रत्नों और वनस्पतियों का अमूल्य भंडार था अत: इसे भी भगवान ने अपनी विभूति बनाया है।

तात्पर्य यह है कि भगवान शंकर अग्नि, कुबेर, और सुमेरु पर्वत में यदि कोई विशेषता हमें नजर आती है तो याद कर लें- यह विशेषता भगवान की है। इन विभूतियों की चर्चा के साथ ही तुरन्त हमारी वृत्तियां भगवान के ऐश्वर्य की ओर उन्मुख हो जाएं इसी आशय से भगवान ने इनका उल्लेख किया है।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ।।२४।।

हे पार्थ, पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति को मेरा स्वरूप समझो। सेनापतियों में स्कन्द (कार्तिकेय) और जलाशयों में समुद्र मैं हूं।

संसार के सम्पूर्ण पुरोहितों में और विद्या बुद्धि में बृहस्पति श्रेष्ठ हैं। वे देवताओं के गुरु और पुरोहित हैं। भगवान उन्हें अपनी विभूति बताते हैं। स्कन्द अर्थात् कार्तिकेय शंकर जी के पुत्र हैं और देवताओं के सेनापति हैं। इनकी वीरता और युद्ध कौशल भी भगवान का ही तेज है। पृथ्वी पर तालाब, कुएं, बावड़ी आदि अनेक हैं पर जब हम सागर तट पर खड़े होकर उसकी उत्ताल लहरों का खेल देखते हैं और उसकी अनन्तता पर दृष्टि डालते हैं तो हम सोचने को विवश हो जाते हैं- कैसी अथाह जल राशि है! इसकी चंचल लहरों की अठखेलियां कितनी लुभावनी लगती है! और ऊपर से अस्थिर अशांत दिखलाई देने वाला यह समुद्र अन्दर से कितना शांत, कितना गंभीर है! भगवान कहते हैं ऐसे समय याद कर लेना- मैं ही सागर के रूप में तुम्हारे सामने खड़ा हूं। यह अथाह जल राशि मैं ही हूं। ये लहरें भी मैं ही हूं। मैं ही बादल बन कर ऊपर उठता हूं और वर्षा के रूप में बरस कर तुम्हें जीवन देता हूं।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।२५।।

महर्षियों में भृगु और वाणियों (शब्दों) में एक अक्षर अर्थात् प्रणव मैं हूं। सम्पूर्ण यज्ञों में जप यज्ञ और स्थावरों में हिमालय मैं हूं।

भृगु, अत्रि, मरीचि आदि सप्त महर्षियों में भृगु जी भक्त ज्ञानी और तेजस्वी हैं। पौराणिक कथा के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों में कौन श्रेष्ठ हैं यह निश्चित करने इनकी नियुक्त की गई थी। इन्होंने क्षीर सागर में सोए विष्णु को लात मारी। भगवान विष्णु ने तुरन्त उठकर उनके चरण पकड़ लिए और कहा- 'महर्षि मेरी छाती के आघात से आपके पैरों को चोट तो नहीं लगी?' भृगु जी ने विष्णु को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया। भगवान विष्णु ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया तब भी महर्षि भृगु के चरण चिन्हों को अपने वक्षस्थल पर भृगुलता के नाम से धारण किए रखा। भगवान भृगु को अपनी विभूति बताते हुए कहना चाहते हैं कि भक्त और मैं भिन्न-भिन्न नहीं। उनकी भक्ति और ज्ञान मेरी ही सत्ता है।

अपनी वाणी से हम भिन्न-भिन्न शब्दों का उच्चारण करते हैं। अक्षरों के मेल से बने ये शब्द किसी न किसी वस्तु, व्यक्ति या प्राणी का संकेत करते हैं किन्तु इनके बीच एक अक्षर ॐ उस परब्रह्म का संकेत करता है जो सृष्टि के सभी नाम रूपों में विराजमान हैं। भगवान करते हैं ॐ मेरा प्रतीक मात्र नहीं, मैं ही हूं ऐसा समझो। ॐ का उच्चारण करते वक्त हमारे मन में यह दिव्य भाव आए कि साक्षात् भगवान ही हमारी वाणी पर विराज रहे हैं।

भगवान यज्ञों में अपने आप को यज्ञ जप बता रहे हैं। हम अपने या समाज के कल्याण के लिए जो कुछ भी यज्ञ, हवन, अनुष्ठान, साधना आदि करते हैं उनमें जप यज्ञ सबसे श्रेष्ठ है। भगवान को याद करते हुए कोई कार्य करते हैं तो सम्पूर्ण कार्यकाल में हमारी भावना यही रहती है कि हम यह सब भगवान के लिए कर रहे हैं। इस भावना के कारण पूरी अवधि में हम भगवान से भावनात्मक रूप से जुड़े रहते हैं। ऐसे समस्त कार्य यज्ञ ही हैं। किन्तु बहुधा इनमें प्रपंच होता है। बहुत सी तैयारी, बहुत सी व्यवस्थाएं देखनी होती है जिनके कारण भगवान की याद की निरंतरता टूट सकती है किन्तु जप यज्ञ के लिए तो किसी भी साधन की जरूरत नहीं। यह हर परिस्थिति में, हर स्थान में, हर प्रकार के व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है चाहे वह धनवान हो या निर्धन, ताकतवर हो या दुर्बल, हृष्ट-पुष्ट हो या अपंग, वाचाल हो या मूक। जप यज्ञ में भगवान से योग निरंतर बना रहे, टूटे नहीं इसी बात पर साधक का ध्यान सबसे अधिक रहता है अतः यह सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। इसीलिए भगवान ने इसे अपनी विभूति बताई है। यही नहीं, जब आप हिमालय दर्शन करें, हिमालय की शांत सुरम्य वादियां, कल-कल बहते झरने, उसके तीर्थ स्थल, फूलों से भरी घाटियां और हिम आच्छादित चोटियों के बीच कन्दराओं में रह कर तप करते साधु-महात्माओं को देख कर नतमस्तक हों तब भी याद कर लें- यह सब कुछ परमात्मा की ही विभूति है।

इस श्लोक से यह समझ लें कि भगवान तो भगवान ही हैं, भक्त भी भगवान ही हैं, उनके द्वारा किए जाने वाले अनुष्ठान भी भगवान ही हैं और जिस स्थान पर वे रहते हैं वे भी भगवान ही हैं।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षिणां च नारद।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।२६।।

सभी वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूं। देवर्षियों में नारद हूं, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि मैं हूं।

पीपल के वृक्ष की विशालता और जीवन काल, दोनों ही बहुत अधिक है। अतः इसे देख कर सर्वव्यापकता और अमरता का भाव आना स्वाभाविक है। इसी लिए वृक्षों में अपनी विभूति का प्रदर्शन करने भगवान ने पीपल के वृक्ष को चुना है। गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भी हम पाएंगे कि पीपल के वृक्ष को भगवान ने समस्त संसार का प्रतीक माना है। देवर्षियों में भगवान अपना सबसे अधिक प्राकट्य नारद जी में मानते हैं। वेसे तो हम दो व्यक्तियों में झगड़ा लगाने या फूट के बीज बोने का काम करने वाले को नारद कह देते हैं पर नारद जी के प्रति निम्न भावनाओं का यह प्रदर्शन हमारा अज्ञान है। नारद जी तो भगवान के महानतम भक्त हैं। वे वैसे भक्त हैं जो केवल स्वयं ईश्वर चिंतन में नहीं डूबे रहते बल्कि दूसरों को भी प्रभु प्राप्ति की राह पर चलाने की युक्ति करते रहते हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार नारद जी ने सहस्त्रों लोगों को हरि का मार्ग दिखाया। प्रजापति दक्ष तो नारद जी से बहुत ही नाराज रहते थे क्योंकि उनके कारण सृष्टि की वृद्धि में रुकावट पड़ती थी। बहुत सी कथाओं में हमें ऐसा लगेगा कि नारद जी गड़बड़ी पैदा कर रहे हैं या लोगों को बहका रहे हैं, पर ध्यान दें तो उनका हर कार्य अन्त में कल्याणकारी साबित होता है।

स्वर्गलोक में नृत्य, गायन आदि करने वाले कलाकारों को गन्धर्व कहते हैं। इनमें चित्ररथ नामक गन्धर्व सबसे प्रतिभावन होने के साथ-साथ भगवान का परम भक्त भी है। यही कारण है कि भगवान उसे अपनी विभूति बता रहे हैं। भगवान केवल कलाकारों में ही नहीं, सिद्धों में भी निवास करते हैं। उनमें से भी कपिल मुनि में तो भगवान की ओजस्विता सबसे स्पष्ट दिखाई देती है। कपिल मुनि सांख्य दर्शन के प्रवर्तक हैं।

इन सब विभूतियों में जो भी विलक्षणता प्रतीत होती है वह मूलतः भगवान की है अतः साधक की दृष्टि भगवान में ही रहनी चाहिए।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।।२७।।

घोड़ों में अमृत के साथ समुद्र से प्रकट होने वाले उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी को और मनुष्यों में राजा को मेरी विभूति मानो।

समुद्र मन्थन के समय प्रकट होने वाले चौदह रत्नों में उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा और ऐरावत नामक हाथी भी थे। उच्चैःश्रवा घोड़ों में सबसे श्रेष्ठ है। ऐरावत भी गजेन्द्रों में सर्वश्रेष्ठ है। इनकी श्रेष्ठता के कारण ही भगवान ने इन्हें अपनी विभूति बताया है। मनुष्यों में राजा श्रेष्ठ होता है। वह सम्पूर्ण प्रजा का पालन और संरक्षण करता है। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा उसमें शक्ति और बुद्धि अधिक होती है इसीलिए वह राज पद प्राप्त करता है।

इन सबमें जो बलवत्ता और सामर्थ्य है वह भगवान से ही आई है अतः उसको भगवान की ही मान कर भगवान का चिंतन करना चाहिए।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।।२८।।

आयुधों में वज्र और धेनुओं में कामधेनु मैं हूं। सन्तान उत्पत्ति के हेतु कामदेव मैं हूं और सर्पों में वासुकि मैं हूं।

वज्र इन्द्र का अस्त्र है जो महर्षि दधीचि की हड्डियों से बना है अतः इसमें महर्षि की तपस्या का तेज है। श्रेष्ठतम आयुध होने के कारण ही इसे भगवान अपनी विभूति बता रहे हैं। कामधेनु समुद्र मथंन से उत्पन्न हुई थी। यह देवताओं और मनुष्यों की कामना पूर्ति करने वाली है। यह भी भगवान की विभूति है। संसार की उत्पत्ति काम से होती है। धर्म के अनुकूल संतान उत्पत्ति के लिए जिस काम का उपयोग होता है वह भगवान की विभूति है। वासुकि नाग समस्त सर्पों के अधिपति और महान भक्त हैं। समुद्र मंथन के समय इन्हीं की मन्थन डोरी बनाई गई थी। इन्हें भी भगवान अपनी विभूति

बता रहे हैं। इन सबों में जो विशेषताएं है वह परमात्मा की ही है ऐसा स्मरण कर हम परमात्मा का चिंतन करें।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ।।२९।।

नागों में अनन्त (शेषनाग) और जल जन्तुओं का अधिपति वरुण मैं हूं। पितरों में अर्यमा और शासकों में यमराज मैं हूं।

शेषनाग नागों के राजा हैं। क्षीरसागर में ये भगवान की शय्या बन कर रहते हैं। भगवान के साथ अवतार लेकर ये भी कई बार लीला करते हैं। लक्ष्मण और बलराम इन्हीं के अवतार हैं, इन्हें भगवान ने अपने ही स्वरूप बताया है। वरुण देव सभी जल जन्तुओं के अधिपति हैं। उन्हें अपनी विभूति बताते हुए भगवान स्पष्ट करना चाहते हैं कि जल जन्तुओं के स्वामी भी वही हैं। अनल सोम आदि सात पितृगण माने जाते हैं इनमें अर्यमा मुख्य हैं। अर्थात् पितरों की पूजा करते समय भी यह भाव रखें कि हम भगवान की ही पूजा कर रहे हैं जो पितृ रूप में हमें मिले थे। शासन करने वाले जितने अधिकारी हैं उनमें यम का शासन सबसे महत्वपूर्ण है। ये पाप पुण्य का भुगतान कर प्राणी को शुद्ध करते है। इनका शासन पूर्णतः धर्म और न्याय के अनुकूल होता है। ऐसी शासन क्षमता भी भगवान के देने से ही मिल सकती है।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।।३०।।

दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करने वालों का समय मैं हूं। पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरुड़ हूं।

भगवान कहते हैं कि दैत्यों में मैं वास करता हूं किन्तु उनके कुकर्मों के कारण तुम्हें ऐसा लग सकता है कि इनमें कैसे भगवान होंगे? भगवान तो आत्म रूप में निवास कर सबको चेतनता और कर्म शक्ति प्रदान करते

हैं लेकिन कर्म वैसे ही होंगे जैसी प्राणी की वासना और बुद्धि होगी? दैत्यों की बुद्धि विकृत होने के कारण वे इतने बुरे कर्म करते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि इनमें भगवान का निवास है। यानी सब दैत्य भगवान के तो हैं पर उनकी विभूति नहीं कहे जा सकते। विभूति तो वे है जो उनका नाम रोशन करे। भगवान अर्जुन से कहते हैं- हे अर्जुन! दैत्यों में भी मेरा नाम रोशन करने वाला एक हुआ है- वह है प्रह्लाद।

ज्योतिष शास्त्र में काल से ही समय की गणना होती है। भगवान ने काल को भी अपनी विभूति बताया है। पशु असंख्य है। किसी को देख कर हमारे मन में घृणा जागती है, कोई अत्यन्त सुकोमल और प्यार करने लायक लगता है। किन्तु सिंह को देखकर भय के साथ-साथ एक प्रकार का आदर भाव भी जागता है। भगवान का अभिप्राय यही है कि उस समय भी हम याद कर लें- ऐसा अद्‌भुत बल और गौरवमय स्वरूप देने वाला मैं ही हूं। विनता के पुत्र गरुड़ पक्षियों के राजा हैं और भगवान के भक्त के भी। ये विष्णु के वाहन भी हैं। वैसे तो गीध मृत शरीर को खाने वाले जन्तु होने के कारण बहुत हेय माने जाते हैं लेकिन देख लीजिए, इन्हीं में गरुड़ भी है जिनका चिंतन करते समय आपके मन में आता होगा- 'ऐसी भक्ति, ऐसा ज्ञान, ऐसी सेवा प्रवृत्ति कैसे आई एक गीध में?' भगवान कहते हैं कि ये विशेषताएं सभी प्राणियों को मेरी ही दी हुई है लेकिन सब इसका पूरी तरह उपयोग नहीं करते इसलिए मैं इन विशेषताओं के रूप में सबमें दिखलाई नहीं देता। ये गरुड़ जी में स्पष्ट दिखाई देती हैं अतः मैं उन्हें अपनी विभूति मानता हूं।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जान्हवी ।।३१।।

पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम मैं हूं। जल जन्तुओं में मगर मैं हूं। बहने वाले में स्रोतों में गंगाजी मैं हूं।

वायु से ही सब चीजें पवित्र होती हैं। हमारा रक्त भी वायु से ही शुद्ध होता है अतः भगवान ने उसे अपनी विभूति बताया है। राम को भगवान का अवतार कहा जाता है पर इसके साथ ही हम शस्त्रधारियों का चिंतन करें तो

राम सर्वश्रेष्ठ होंगे। शस्त्रधारी के रूप में वे भगवान की विभूति हैं। जल जन्तुओं में मगर सबसे बलवान है अतः भगवान उसे अपने विभूति बताते हैं।

गंगा जी की श्रेष्ठता का तो कहना ही क्या। बहते हुए जल स्त्रोत झरने, नद, नदी, नाले अनेक हैं किन्तु गंगा की तो महिमा ही न्यारी है। गंगा का पानी दूषित नहीं होता। गंगा का दर्शन, गंगा का स्पर्श और गंगा स्नान करने हमारे हृदय में एक पवित्र भाव उत्पन्न होता है। इसी भाव के कारण हम उसे गंगा मैया कहते हैं और पूजा करते हैं। भगवान कहते हैं कि गंगा मेरे ही गुणों को पृथ्वी पर भासित करती है। यह मेरी विभूति है।

सभी विभूतियों को उनकी विशिष्ट महत्ता भगवान से ही मिली है। संसार में जहां-जहां जिस वस्तु या प्राणी में हमें विशेषता दिखलाई देती है, उनके प्रति हमारा आकर्षण हो जाता है। यही आकर्षण फिर राग में बदल जाता है और हमारे मन बुद्धि उसमें फंसे रह जाते हैं। विभूति योग के द्वारा भगवान मनुष्य मात्र को यह बतला रहे हैं कि जब तुम संसार के प्राणियों और वस्तुओं के बीच व्यवहार करते वक्त ये विशेषताएं देखो तो हम उस विशेषता, सुन्दरता आदि को उस व्यक्ति वस्तु की मत मानो। तुम तो यह चिंतन करो कि भगवान कितने विशिष्ट, कितने सुन्दर, कितने तेजस्वी हैं जिनका अंश मात्र इन वस्तुओं में प्रकट हो कर ही मुझे इतना आकर्षक लग रहा है। ऐसा करने से तुम्हारे मन बुद्धि उन वस्तुओं प्रणियों में न उलझ कर मुझसे युक्त हो जाएंगे। संसार का चिंतन छूट जाएगा और मेरा चिंतन होने लगेगा। इसका परिणाम यह होगा कि तुम मुझे तत्व से जान लोगे। मुझमें तुम्हारी भक्ति दृढ़ हो जाएगी और अंत में तुम मुझे पालोगे।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।।३२।।

हे अर्जुन! सम्पूर्ण सर्गों के आदि मध्य और अन्त में मैं ही हूं। विद्याओं में अध्यात्म विद्या और परस्पर शास्त्रार्थ करने वालों का वाद मैं हूं।

जिस प्रकार बचपन, जवानी, बुढ़ापे के बदलते शारीरिक रूपों में व्यक्ति एक ही रहता है उसी प्रकार संसार में जितने सर्ग अर्थात् उत्पन्न होने वाले

प्राणी हैं उनके आदि, मध्य और अन्त में भगवान ही रहते हैं। ऐसा कह कर भगवान सभी प्राणियों को अपनी विभूति बता रहे हैं। संसार के प्राणियों को देखकर ही हमें भगवान का याद आनी चाहिए। जब हम कम्प्यूटर के दिमाग की प्रशंसा करते हैं तब बहुधा सोचते हैं कि आदमी का दिमाग कितना तेज है जिसने कम्प्यूटर बनाया। इसी प्रकार आदमी के दिमाग की प्रशंसा करें तो यह सोचें कि भगवान कितने कुशल कारीगर हैं जिन्होंने आदमी को बनाया। इससे उनके प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा भक्ति का उदय होगा। लेकिन आज तो अनेक तथाकथित बुद्धिजीवी है तो कहते हैं कि कम्प्यूटर तो आदमी के बनाने से बना लेकिन आदमी को किसी ने नहीं बनाया वह अपने आप बन गया।

संभवत: इसी लिए भगवान कह रहे हैं कि सम्पूर्ण विद्याओं में अध्यात्म विद्या सर्वश्रेष्ठ है, उसे तुम मेरी विभूति जानो। लौकिक विद्याएं संसार में निर्वाह करने के लिए आवश्यक है लेकिन केवल उन्हें ही पढ़ कर तुम इस प्रकार के तर्कहीन तर्क करते रह जाओगे। अध्यात्म विद्या के द्वारा ही तुम मुझे और अपने आप को भी तत्व से जान पाओगे। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। जब तक हमें यही ज्ञान नहीं होगा कि हममें कितनी शक्ति है, कैसी क्षमता है, हमें क्या करने बुलाया गया है तब तक कहीं जा कर हम कैसे ठीक कार्य कर पाएंगे? अत: अध्यात्म विद्या का ज्ञान हमारे लिए परम आवश्यक है।

भगवान कहते हैं कि शास्त्रार्थों में वाद मैं हूं। वाद उस शास्त्रार्थ को कहते हैं जो किसी पर अपनी श्रेष्ठता दिखाने के लिए नहीं किया जाता बल्कि तत्व के निर्णय के लिए किया जाता है। साधारण भाषा में इसे विचार विनिमय कह सकते हैं।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्व: सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षय: कालो धाताहं विश्वतोमुख: ।।३३।।

अक्षरों में अकार तथा समासों में द्वन्द्व समास मैं हूं। मैं ही अक्षय काल तथा सब ओर मुख रखने वाला धाता हूं।

वर्णमाला में सबसे पहले अ आता है। यह सभी अक्षरों में ध्वनित

होता है। अ की मात्रा के बिना किसी शब्द का उच्चारण नहीं किया जा सकता अत: भगवान इसे अपनी विभूति बताते हैं। जब दो या दो से अधिक शब्दों को मिला कर एक शब्द बनता है तो उसे समास कहते हैं। ऐसे शब्दों में जब दोनों पद समान रूप से महत्वपूर्ण रहते हैं जैसे माता-पिता, रात-दिन आदि, तब उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। भगवान इसे अपनी विभूति कहते हैं। भगवान ने अक्षय काल को अपनी विभूति बताया है। इसके पहले भी भगवान ने बताया था कि गणना करने वालों में काल मैं हूं। वह काल प्रतिपल बदलने वाला काल था जिसके अनुसार समय का माप होता है। यहां भगवान अपने को अक्षय काल बता रहे हैं यानी कालों का भी काल जिसे महाकाल कह सकते हैं। यह गणना से भी परे है। तात्पर्य यह है कि भगवान की सत्ता को काल द्वारा गणना करके सीमित नहीं किया जा सकता।

भगवान सम्पूर्ण विश्व की ओर मुख रखने वाला धाता हैं। वे सबका पोषण करते हैं और उनकी दृष्टि सब पर रहती है। संसार का क्षुद्र से क्षुद्र और महान से महान समझा जाने वाला प्राणी समान रूप से उनकी कृपा का अधिकारी है। हम अज्ञानवश समझते हैं कि भगवान हमें देखते ही नहीं, वे हमें ही दुख दे रहे हैं जबकि हमने किसी का बुरा नहीं किया। हमारी दृष्टि अल्प है, सीमित है और राग-द्वेष, स्वार्थ, अहंकार का चश्मा धारण किए हुए हैं जिसके कारण हम निष्पक्ष रूप से सोच समझ और देख नहीं पाते, लेकिन भगवान की इस सृष्टि में जो कुछ हो रहा है वह वैसा ही हो रहा है जैसा होना चाहिए। हम किसी की शिकायत न करें बल्कि हर घटना में भगवान के दिव्य संदेश को जानने का प्रयत्न करें तो हमें भगवान की विभूति नजर आएगी और हमारा मन शुद्ध होगा।

एक व्यक्ति ने नियम बना रखा था कि जब-जब उसे भगवान की कृपा के दर्शन होंगे वह अपनी गुल्लक में एक सिक्का डालेगा। एक दिन खिड़की के पास रखी टेबल पर पड़े कुछ जरूरी कागज उड़ कर पानी में भीग गए और नष्ट हो गए। उसने यह सोचते हुए सिक्का डाला कि भगवान ने उसे संदेश दिया है कि जीवन में हर वक्त सावधानी आवश्यक है। प्रमाद हानिकारक है। एक दिन वह कहीं बाहर गया था। वापस आने पर उसने देखा कि घर का छप्पर गिर जाने से उसका प्यारा कुत्ता घायल हो गया है। उसने सिक्का डाला 'छप्पर ठीक करने में आलस कर रहा था, भगवान ने चेता

दिया कि बड़ी दुर्घटना घट सकती है।' एक बार किसी पूजन समारोह के लिए उसे कुछ सामग्री की आवश्यकता थी। वह पास के शहर गया और दुकानदार को लिस्ट पकड़ा दी। उसके मित्र ने कहा- 'यदि दुकानदार सामग्री अच्छी नहीं देगा तो?' उसने कहा- 'मुझे भगवान पर भरोसा है। यह तो उनका ही काम है। वे स्वयं देखेंगे कि समान अच्छा हो।' हाथ में समय होने पर भी भगवान पर दृढ़ भरोसा कर उसने सामग्री का निरीक्षण करना आवश्यक नहीं समझा। सामग्री घटिया निकली। उसने सिक्का डाला- 'भगवान ने अत्यन्त कृपा करके मुझे अच्छी तरह समझा दिया कि कर्म उनके ऊपर छोड़ना अनुचित हैं। कर्म का अधिकार तो मेरा है। उन पर तो फल ही छोड़ा जा सकता है।'

इस प्रकार हर वस्तु में उनकी विभूति और हर घटना में उनकी कृपा नजर आने लगे तो उनसे नित्य योग ही है।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ।।३४।।

सबका हरण करने वाली मृत्यु और उत्पन्न होने वालों का उद्भव मैं हूं तथा स्त्री जाति में श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, घृति और क्षमा मैं हूं।

हम सभी को मृत्यु नाम से ही बहुत डर लगता है। मरने का नाम लेना किसी को अच्छा नहीं लगता लेकिन भगवान कहते हैं कि मृत्यु भी मेरी विभूति है। मृत्यु स्मृति तक को हर लेती है। यदि यह अद्भुत सामर्थ्य मृत्यु में न होती तो हम कितने दुखी और कितने चिन्तित होते। अभी तो हमारी चिंता इस जन्म के संबंधियों को लेकर ही है, हमारे क्रोध के भाजन इसी जन्म के दुश्मन होते हैं, यदि सारे जन्म याद रहें तो पता चलेगा कि आज जो हमारे सबसे प्यारे बने हुए हुए हैं उन्होंने किसी जन्म में हमें घोर कष्ट पहुंचाया था। हम कहीं के नहीं रहेंगे। इस प्रकार मृत्यु में जो दुख, कष्ट, चिन्ता, मोह इत्यदि मिटाने की शक्ति है वह हमारे लिए परमात्मा की महान विभूति है। केवल मृत्यु ही नहीं, उत्पत्ति भी भगवान की ही विभूति है। उद्भव और मृत्यु के सतत् खेल को हम रोज जीवन में देखते हैं, उस समय जरा भगवान की शक्ति का स्मरण कर लें। कीर्ति अर्थात् यश, श्री अर्थात् ऐश्वर्य,

वाक् यानी प्रभावशाली ढंग से किसी बात को प्रस्तुत करने की क्षमता, स्मृति यानी स्मरण शक्ति, मेधा यानी विद्या ग्रहण कर याद रखने की क्षमता, घृति यानी अपने सिद्धान्तों के प्रति अवचिलता और क्षमा ये सात स्त्री वाचक गुण है। पुराणों में इन्हें सात श्रेष्ठ स्त्रियों का रूप दे दिया गया है। ये गुण जिनमें हमें मिलते हैं उनसे हम सहज ही प्रभावित हो जाते हैं। भगवान कहते हैं कि उनसे अभिभूत होकर जब तुम्हारा मस्तक झुके तो याद कर लो कि ये मेरे द्वारा दिए गए गुण हैं। इनकी महानता को स्वीकार करना मेरी ही महानता को मानना है। केवल दूसरों में नहीं, यदि ये गुण अपने में भी नजर आए तो स्वयं पर न इतरा कर यही सोचें कि ये भगवान के द्वारा अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक दिए गए हैं, यदि भगवान ने हमें इनके लिए योग्य समझा है तो हमारा भी कर्तव्य है कि हम उनका उपयोग इस प्रकार करें कि भगवान भी गर्व करें। लोग यह न कहे कि देखो, भगवान ने कैसे दुष्ट को धन या वाक्पटुता दे दी कि सबका सर्वनाश हो रहा है। जैसे पिता द्वारा जन्म देने और पोषित किए जाने पर पुत्र का कर्तव्य बन जाता है कि वह पिता का नाम रोशन करे, लोग कहे कि वर्मा जी का पुत्र तो उनकी विभूति है उसी प्रकार का कर्तव्य हमारा भी अपने परमपिता परमेश्वर के प्रति है।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।३५।।

गायी जाने वाली श्रुतियों में बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूं। महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में बसन्त ऋतु मैं हूं।

चारों श्रुतियों में सामवेद में गाए जाने वाले श्लोक हैं। इसमें बृहत्साम नामक एक गीतिका है जिसमें इन्द्र रूप परमेश्वर की स्तुति की गयी है। सामवेद में सबसे श्रेष्ठ होने के कारण भगवान ने इसे अपनी विभूति बताया है। वेदों में जितनी छन्दबद्ध ऋचाएं हैं उनमें गायत्री सबसे मुख्य है। गायत्री को वेद की जननी कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि वेद गायत्री से ही प्रकट हुए हैं। इसमें परमात्मा के स्वरूप का ही वर्णन है, परमात्मा की ही प्रार्थना और परमात्मा का ही ध्यान है। इससे परमात्मा की ही प्राप्ति होती है। अतः

भगवान ने इसे अपनी विभूति बताया है। मासों में मार्गशीर्ष अत्यन्त श्रेष्ठ है। वर्षा ऋतु के बाद अन्न के लहलहाते खेत इसी मास में दिखाई देते हैं जिसे देख कर लोग आनन्दित होते हैं, कृषकों के घर धन धान्य से भर जाते हैं। इसे भी भगवान अपनी ही विभूति बताते हैं। ऋतुओं में सर्वश्रेष्ठ है बसन्त ऋतु जब न तो अधिक जाड़ा होता है न गर्मी। सर्वत्र पुष्पित सुरभित फूलों और शीतल मन्द सुगन्धित वायु से परिपूरित प्रकृति यदि हमें इसके सर्जनहार की याद न दिलाए तो हमारी विचार शक्ति व्यर्थ है।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।।३६।।

छल करने वालों में जुआ और तेजस्वियों का तेज मैं हूं। विजय, निश्चय और सात्विक मनुष्यों का सात्विक भाव मैं हूं।

भगवान जब अपनी विभूति गिनाने लगे तो उन्हें लगा कि मैं तो अपने ऐश्वर्य का ज्ञान देने के लिए ये सब नाम गिना रहा हूं, इससे अर्जुन यह न समझ बैठे कि दुनिया में जितनी अच्छी चीजें हैं उन्हीं में भगवान हैं और बुरे में नहीं। अर्जुन ने तो पूछा था, 'मैं आपका चिन्तन कहां कहां करूं?' सरल बालक के लिए अच्छाई में भगवान को देख पाना अपेक्षाकृत सुलभ होगा इसलिए भगवान अच्छाई ही गिना रहे हैं पर भ्रम के निवारण के लिए यह भी बता दिया कि दुनिया के छल कपट के पीछे भी मेरी ही शक्ति काम हर रही है। छल के राजा जुए को तुम मेरी विभूति मानो। जुए का ही नाम गिनाने के पीछे कारण यही है कि अर्जुन ने भयंकरतम बुराई के रूप में जुए का ही दुष्प्रभाव भोगा था। उस वक्त यदि सबसे अधिक घृणित उसे कुछ लग रहा होगा तो वह था जुआ। भगवान उसे कह रहे हैं कि जब जुए में किए जाने वाले छल को याद कर तुम्हारा रक्त खौलने लगे तो याद कर लो कि मनुष्यों में छल कपट की प्रवृत्ति भी मेरे बिना संभव नहीं है। इससे तुम्हारा ध्यान जुए से हट कर मेरी ओर चला आएगा। घृणा और रोष के स्थान पर संभवत: मेरे प्रति जिज्ञासा जाग जाए कि यह कैसी लीला है! यह तुम्हारे हित में ही होगा। मुझे तत्वरूप से जानने की जिज्ञासा तो तुम्हारे लिए कल्याणकारी

ही है। जिज्ञासा ही तुम्हारा योग मुझसे कराएगी अतः जुए को भी मेरी विभूति मानो।

इसका अर्थ यह नहीं कि जुआ भगवान की विभूति है तो फिर स्वच्छन्द होकर जुआ क्यों न खेलें? यहां प्रसंग विधि निषेध अर्थात् 'क्या करना चाहिए क्या नहीं' का नहीं है। यहां तो केवल यह समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि सृष्टि के समस्त नाम, रूप, गुण आदि में एक भगवान ही सत्ता है। सड़े हुए फल में भी भगवान है तो इसका अर्थ यह तो नहीं कि हम सड़े फल को खुश होकर हम प्रेम से खाएंगे? यदि आप ऐसा कर सकते हैं, तो बेशक खेलिए जुआ। यदि ध्यान में निरन्तर भगवान बने रहे तो कोई हर्ज नहीं है।

पुनः अपनी गौरवमयी विभूतियों के वर्णन पर उतरते हुए भगवान कहते हैं कि तेजस्वियों का तेज मैं हूं। किसी तेजस्वी पुरुष को प्रणाम करते समय तुम्हें मेरी याद आ जाए तो मुझसे योग हो जाएगा। यदि तुम अपनी विजय की सुख में फूल रहे हो तब भी याद कर लो, मेरी ही विभूति, मेरा ही उत्कृष्ट उपहार है तुम्हारे लिए। इससे विजय के सुख के साथ गर्व न आकर भगवद् बुद्धि आएगी जो योगी के लिए परम आवश्यक है। व्यवसाय का अर्थ दृढ़ निश्चय है। जब बुद्धि एक ही निश्चय पर दृढ़ रहती है, इधर उधर नहीं डोलती तब उसे व्यवसायात्मिका बुद्धि कहते हैं जिसका उल्लेख दूसरे अध्याय में आया था। इसे भी भगवान अपनी विभूति बता रहे हैं।

सत्व रजस तमस तीनों प्रकृति के गुण हैं और प्रकृति भगवान की ही रचना है। उसमें पदार्थ रूप से और निर्माता के रूप से भी भगवान ही हैं लेकिन प्रकृति के तीनों गुणों में सत्वगुण सर्वश्रेष्ठ है। अतः भगवान इसे अपनी विभूति बता रहे हैं। तात्पर्य यह है कि तेज, व्यवसाय, सात्विक भाव आदि अपने में या दूसरों में देखने में आए तो साधक इसे अपना या किसी वस्तु व्यक्ति का गुण न मानकर ईश्वर का प्रसाद माने तो उसे भगवान का स्मरण बना रहेगा।

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पाण्डवानां धनन्जय ।
मुनिनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।३७।।

वृष्णि वंशियों में वासुदेव और पाण्डवों में धनन्जय मैं हूं। मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य मैं हूं।

अर्जुन ने पूछा था कि किस किस भाव से भगवान का चिंतन करूं? संसार में किस किस चीज में आपको देखूं? यहां कृष्ण भगवान कहते हैं कि मैं वासुदेव, और तुम धनन्जय, हम दोनों ही भगवान की विभूतियां हैं।

श्री कृष्ण तो स्वयं साक्षात् भगवान ही हैं फिर वे अपने आप को अपनी ही विभूति बता रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि गीता का उपदेश देते वक्त वे वसुदेव के पुत्र वासुदेव के रूप में नहीं बल्कि अपने वास्तविक परब्रह्म परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसी लिए गीता में अर्जुन भले ही उनके लिए केशव, माधव, गोविन्द आदि सम्बोधनों का प्रयोग करता है, व्यास जी ने सर्वत्र 'श्री भगवानुवाच' ही लिखा है। अर्जुन को तो किसी ने बताया नहीं था कि श्री कृष्ण साक्षात् भगवान है इसलिए वह समझ नहीं पाया था किंतु हमें तो वेदव्यास जी तथा अन्य ऋषि मुनि शास्त्रों के द्वारा बता चुके हैं कि नन्दलाल वास्तव में ब्रह्म ही हैं जो पृथ्वी पर किसी विशेष उद्देश्य से लीला कर रहे थे। फिर भी हम उन लीलाओं के प्रति शंका करने लगते हैं- 'वे गापियों का माखन क्यों चुराते थे? उन्होंने गोपियों के वस्त्र हरण कर उन्हें नग्नावस्था में जल से बाहर निकलने को विवश क्यों किया?' हम भूल जाते हैं कि गोपियां भी वे ही हैं, माखन भी वे ही हैं, उनके पति भी वे ही हैं। अर्जुन से भगवान कह रहे हैं कि मुझे देखकर भी परमात्मा का स्मरण करो और अपने आप की विशेषताओं के विषय में सोचते वक्त भी परमात्मा को ही याद करना। मुझमें और तुझमें जो कुछ भी विशेषताएं हैं, ये सब परमात्मा की ही विलक्षणता है।

इसके बाद भगवान ने चारों वेदों के संकलनकर्ता, पुराण, महाभारत आदि के रचयिता महर्षि वेदव्यास को भी अपनी विभूति बताया है। व्यास जी की रचना शक्ति पर आश्चर्य हो तब भी हम उस परमपिता को नमस्कार करें, जिन्होंने ऐसी अद्‌भुत सामर्थ्य उन्हें दी। शास्त्रीय सिद्धान्तों को ठीक तरह से जानने वाले जितने पंडित हैं उन्हें कवि कहते हैं। इनमें शुक्राचार्य मुख्य हैं। वे दैत्यों के गुरु थे। वे संजीवनी विद्या के ज्ञाता थे। उनकी अद्‌भुत प्रतिभा

और सामर्थ्य भी भगवान की ही शक्ति है यह हम स्मरण रखें।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।३८।।

दमन करने वालों में दण्ड और विजय चाहने वालों की नीति मैं हूं। गोपनीय भावों में मौन और ज्ञानवानों में ज्ञान मैं हूं।

दुष्टों को दुष्टता से बचा कर सन्मार्ग पर लाने के लिए दण्डनीति मुख्य है, इसलिए भगवान ने इसे अपनी विभूति बताया है। अथक कर्म करने वाले भी तभी विजय प्राप्त करेंगे जब वे नीति से काम लेंगे। इसलिए भगवान इसे अपनी विभूति बताते हुए मानों कहना चाहते हैं कि सबको विजय दिलाने वाला भी मैं ही हूं। गोपनीयता रखने के जितने साधन हैं उनमें मौन प्रमुख है। चुप रहने वाले के मन में क्या है, कोई नहीं जान सकता। इसे भी भगवान द्वारा हमें दिया गया विशेष उपहार समझें।

अब अंत में भगवान बताते हैं ज्ञानी व्यक्ति ही मैं नहीं, उनका ज्ञान भी मैं ही हूं। इस प्रकार भगवान ने वस्तुओं, व्यक्तियों, देवताओं आदि को अपनी विभूतियां बताई ही, इस श्लोक में स्पष्ट कर दिया कि विचारों, भावनाओं, विद्याओं आदि के रूप में भी सर्वत्र वे ही हैं। सब कुछ भगवान ही है, यह चिंतन करना ही विभूति योग है।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।३९।।

हे अर्जुन, सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज है वह बीज मैं ही हूं। मेरे बिना कोई चर-अचर प्राणी नहीं है।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।४०।।

हे परंतप अर्जुन! मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है। मैंने तुम्हारे सामने अपनी विभूतियों का जो विस्तार कहा है वह तो केवल संक्षेप है।

याद करें उस कुम्हार को जो बालक के भोले प्रश्नों का उत्तर देते हुए कह रहा था, यह गाय भी मिट्टी की है, यह घोड़ा भी मिट्टी का, यह औरत भी मिट्टी, इसकी साड़ी भी मिट्टी की, ये महात्मा गांधी भी मिट्टी के ... और अंत में थक कर उसने कहा- मैं तुम्हें कितना बताऊं? यहां जितनी वस्तुएँ हैं सभी मिट्टी की ही हैं और ये तो बहुत थोड़ी हैं, इसके अलावा मिट्टी की चीजें अनन्त हैं।

अर्जुन को भगवान ने बता दिया था कि विश्व में सभी वस्तुओं और प्राणियों में वे ही हैं फिर भी भोले बालक के समान उसने प्रश्न पूछा- 'मैं किस-किस में आपको देख सकता हूं?' तब भगवान ने सुरलोक के देवता, देवर्षि, महर्षि, यक्ष, सूर्य, चन्द्र आदि गिना दिए फिर मृत्यु लोक के महान मुनि, कवि आदि गिनाए। इसके बाद उन्होंने पशु-पक्षी में भी अपना प्राकट्य बता दिया। फिर जड़ तत्वों जैसे पर्वत-नदियों आदि की बारी आई। जड़-चेतन दोनों में अपने स्वरूप का वर्णन करने के बाद वे सूक्ष्म जगत में उतर कर नीति, ज्ञान, कीर्ति, श्री आदि में भी अपने आप को बताते हैं। अब वे थक कर पुनः अपनी पुरानी बात आ गए, 'अर्जुन कहां तक गिनाऊं, कोई अन्त नहीं है। संक्षेप में बताने में ही इतना समय लग गया। बस तुम तो एक बात समझ लो कि सब का बीज मैं हूं। सबकी उत्पत्ति मुझसे ही हुई है। मेरे बिना इस स्थूल, सूक्ष्म, कारण जगत में कुछ भी है ही नहीं।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।४१।।

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त वस्तु है उस उसको तुम मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न हुई समझो।

अभी तक तो भगवान हर श्लोक में केवल यही कह रहे थे कि

यह मेरी विभूति है, वह मेरी विभूति है। विभूति बताने के बाद अब योग बता रहे हैं जिससे हमें यह समझ में आ जाए कि विभूतियों की जानकारी का हम कैसे उपयोग करें कि वह हमारे कल्याण का साधन बन जाए।

भगवान स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि भगवान की विभूति को देखने की दृष्टि को हम सीमित न करें। हम केवल हिमालय, गंगा, सूर्य, चन्द्रमा आदि में ही परमात्म भाव न रखें बल्कि जो नहीं भी गिनाई गई हैं उन ऐश्वर्य, शोभा और बलयुक्त वस्तुओं, प्राणियों को भी उन्हीं की विभूति समझें। संसार में छोटी से छोटी वस्तु हो या बड़ी से बड़ी, उसकी विशेषता अवश्य है। हमें तो 'तारीफ उसे खुदा की जिसने जहां बनाया' के भाव के साथ जहां को देखना है। यही विभूति योग है। जैसे रेडियो में गाना सुनते वक्त, पंखे की हवा खाते वक्त और अंधेरे में बत्ती जलाते वक्त बहुत बार ही हमारे मन में आ जाता है- 'वाह! बिजली भी क्या चीज है।'

एक वेश्या गा रही थी तो एक संत मस्त हो गए कि 'देखो! भगवान ने कैसा सुन्दर गला दिया है।' वेश्या का गाना सुनते वक्त भी संत की भाव दृष्टि अपने ठाकुर जी पर ही रही। भगवान यही कहना चाहते हैं कि संसार में सबके साथ यथोचित व्यवहार करते समय हम भी विचार करते रहें कि यह भगवान का ही स्वरूप है, जो हमारे साथ व्यवहार कर रहा है। जो बातें, जो वस्तुएं, जो व्यक्ति हमें अच्छे नहीं लगते उनके साथ भी हम व्यवहार करते वक्त विचार करें- देखो भगवान का बहुरूपियापन! कैसे-कैसे विचित्र रूप धारण कर लेता है कि कोई पहचान भी न पाए। जो बातें, जो वस्तुएं, जो व्यक्ति हमें अच्छे लगते हैं या जिनसे हमें लाभ होता है उनके प्रति हम कृतज्ञ जरूर बने रहे, उनकी सेवा भी करें किन्तु उनकी व्यक्तिगत विशेषता मानकर उसमें फंस न जाएं-सावधान रहें। उसे भगवान की विशेषता समझें।

इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक चिंतन करने से धीरे-धीरे राग-द्वेष पसन्द नापसन्द का प्रभाव हम पर कम होता जाएगा और हममें समता आती जाएगी। यही तो बुद्धियोग है जिसके विषय में भगवान ने दसवें श्लोक में कहा था कि अपने भक्तों को मैं बुद्धियोग देता हूं।

अंत में भगवान फिर कहते हैं-

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।।४२।।

अथवा हे अर्जुन! तुम्हें इस प्रकार बहुत सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? मैं अपने किसी एक अंश से संपूर्ण जगत को व्याप्त करके स्थित हूं।

विश्व के कण-कण में अपना रूप दिखाने के बाद अब भगवान अपना और विस्तार बता रहे हैं। पहले तो उन्होंने कुछ ऐसे उदाहरण गिनाए थे जिनकी महत्ता से हम पहले से ही प्रभावित हैं और हमें लगता है कि हां, भगवान की महिमा है नहीं तो सूर्य इस प्रकार अथक रूप से कैसे प्रकाश दे सकता है। भगवान की ही विशेष शक्ति है जिससे व्यास देव जी ने इतने शास्त्रों की रचना कर सके। भगवान की ही विशेष कृपा है कि फलां व्यक्ति अकेला इतने लोगों को अपना अनुनायी बना लेता है इत्यादि। इसके बाद उन्होंने कहा कि इतना सुनकर यह न समझें कि बात पूरी हो गई। इनके अलावा और भी सब कुछ जो दिखाई सुनाई देता है उनमें भी वे ही हैं और अब बता रहे हैं कि यह न समझें कि इतने से बात पूरी हो गई। यह तो उनका एक अंश मात्र है। इस ज्ञात संसार के अलावा वे और भी बहुत कुछ है।

जो ज्ञात था उसमें तो भगवान के विश्वरूप को अर्जुन समझने का प्रयत्न कर रहा था। अब भगवान ने यह नई बात कह दी तो उसकी बुद्धि एकदम चकरा गई। हे, भगवान! मैं कैसे समझूं आपको? मैं समझ गया हूं कि मुझे कुछ समझ में नहीं आया।' और तब वह और भी भोलेपन से मचलेगा और बोलेगा- भगवान अपना यह विश्वरूप मुझे शब्दों से न समझाओ, दिखा ही दो। यह ग्यारहवें अध्याय का विषय है। गीता के प्रायः हर अध्याय का अंतिम श्लोक भगवान जानबूझ कर ऐसा बोलते ही हैं कि अर्जुन फिर कुछ प्रश्न करें और वे एक नई बात शुरू करें।

इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में विभूति योग नामक
दशम अध्याय पूर्ण हुआ।
ॐ तत् सत्

दशम अध्याय का उपसंहार

दशम अध्याय में भगवान ने जो कुछ कहा है वह ज्ञान की वार्ता के रूप में पहले भी स्थान-स्थान पर कह चुके थे। चतुर्थ अध्याय में 'ब्रह्मार्पणम् ब्रह्म हवि ...' कहा था पांचवें में 'विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ...' कहा था, छठे अध्याय में 'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति' कहा था, सातवें में 'वासुदेवः सर्वमितिः' और 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' कहा। नौवें अध्याय में फिर बहुत सी विभूतियां गिनाई, जगत को अपनी मूर्ति बताया किंतु दसवें अध्याय में पुनः इन सबको संकलित कर बताया कि केवल बुद्धि से इन बातों को स्वीकार कर या सिद्धांत रूप से मान कर कुछ लाभ नहीं होने वाला। तुम तो इस ज्ञान का लाभ उठाओ। विभूति ज्ञान को तुम परमात्मा से युक्त होने का साधान बनाओ।

इस साधना का संबंध पूरी तरह केवल मन से है, व्यवहार से नहीं। जब तक चित्त की वृत्ति में संसार अलग और परमात्मा अलग है तब तक हम कितना भी ढकोसला कर लें, हमें हासिल कुछ नहीं होने वाला। हम अपने को बड़ा समझते रहे, घंटों पूजा घर में बैठ कर भजन गाएं, ध्यान लगाएं, भगवान को बुलाएं, उनके लिए तड़पें और और रोएं भी, किन्तु अपने घर के लोगों, नौकर-चाकर, कुटुम्बी-जनों में उनकी मूर्ति न देख पाए तो सब व्यर्थ है। जगत की भिन्न सत्ता को परमात्मा में मिलाना आवश्यक है क्योंकि यही यथार्थ सत्य है। यह काम सरल नहीं। किंतु अभ्यास के द्वारा संभव हो सकता है। जैसे हम एक बालक को भगवान का रूप नहीं मान पाते लेकिन बंसी बजाती एक आकृति को देखकर हमारे हृदय में दिव्य भाव उमड़ आता है। क्यों? क्योंकि मूर्ति में भगवान के दर्शन का हमें अभ्यास हो गया है। जिनके घरों में लड्डू गोपाल की सेवा होती है उनके मन में लड्डू गोपाल की मूर्ति के प्रति गहरा वात्सल्य और ममत्व हो जाता है क्योंकि उन्हें उसमें कृष्ण कन्हैया को देखने का अभ्यास हो गया है।

हमारा सर्वोच्च लक्ष्य है सबमें एक ही परमात्मा का दर्शन करना। लेकिन अभी तो हमें सबमें दुष्टता ही नजर आती है, परमात्मभाव आए कैसे? दूसरों के लिए तो हम यही कह देते हैं कि वह दुष्ट है, पर अपने आप को तो हम सभी बहुत महान, बहुत भला समझते हैं। पर क्या हमें अपने हृदय में ही भगवान कभी नजर आते हैं?

इसीलिए, बात अच्छे बुरे की नहीं, बात विचार करने की और अभ्यास करने की है। हां! अभ्यास भी यदि महानता में भगवान को देखने का प्रयत्न से शुरू करेंगे तो वह कुछ सफल होगा, इसीलिए भगवान ने इतनी विभूतियों का वर्णन किया है। इनको देखते वक्त हम बार-बार भगवान को याद करने का अभ्यास करें। सुंदर फूल देखते समय सोचें कि भगवान कितना महान कारीगर है। मां की ममता को देखकर विचार करें कि जब एक औरत इतनी ममतामयी और प्रेममयी हो सकती है तो वह भगवान प्रेम का कितना बड़ा सागर होगा जिसका एक अंश भर हमारी मां में है।

इस प्रकार जगत को देखने का अभ्यास करना होगा। चित्त की वृत्तियों को बारबार जगत के प्रपंच से हटाकर भगवान की ओर उन्मुख करना होगा। सबमें परमात्मा है, हम अपने अज्ञान के कारण इसे देख नहीं पाते। इस अज्ञान के मल को हमें दूर करना ही है ऐसा दृढ़ निश्चय कर निरंतर अभ्यास करते रहे, उसमें शिथिलता न आने दें तो धीरे-धीरे इस विभूति योग का लाभ अवश्य मिलेगा। फिर यदि हमारे मन में अपने परिवार के लोगों, मित्रों, परिजनों, आश्रितों और साथ व्यवहार करने वाले लोगों को देख कर यही भाव आने लगे कि भगवान कितने स्वांग भरकर हमारे सामने आ रहे हैं तो फिर बात बनी ही समझिए। फिर हमें आगे बढ़ते देर नहीं लगेगी और सारा जगत परमात्ममय नजर आने लगेगा। परमात्मा की प्राप्ति का यह अनूठा उपाय इस दशम अध्याय में विभूति योग के नाम से बताया गया है। अभ्यास करने का प्रयत्न करने पर भी सफलता न मिले, विभूति योग समझ में आ जाने पर भी बात जीवन में न उतरे, संसार अलग और परमात्मा अलग नजर आए तो भगवान में चित्त लगाकर, उनमें अपने प्राणों को स्थापित कर प्रार्थना करें कि वे हमें ऐसी शक्ति दें। भगवान ने दसवें अध्याय के दसवें श्लोक में वादा किया है। अपने भक्तों को निर्मल बुद्धि वे देते हैं जिससे उनकी प्राप्ति हो सके।

ॐ तत् सत्